जलपरदे से

सतीश व्यास

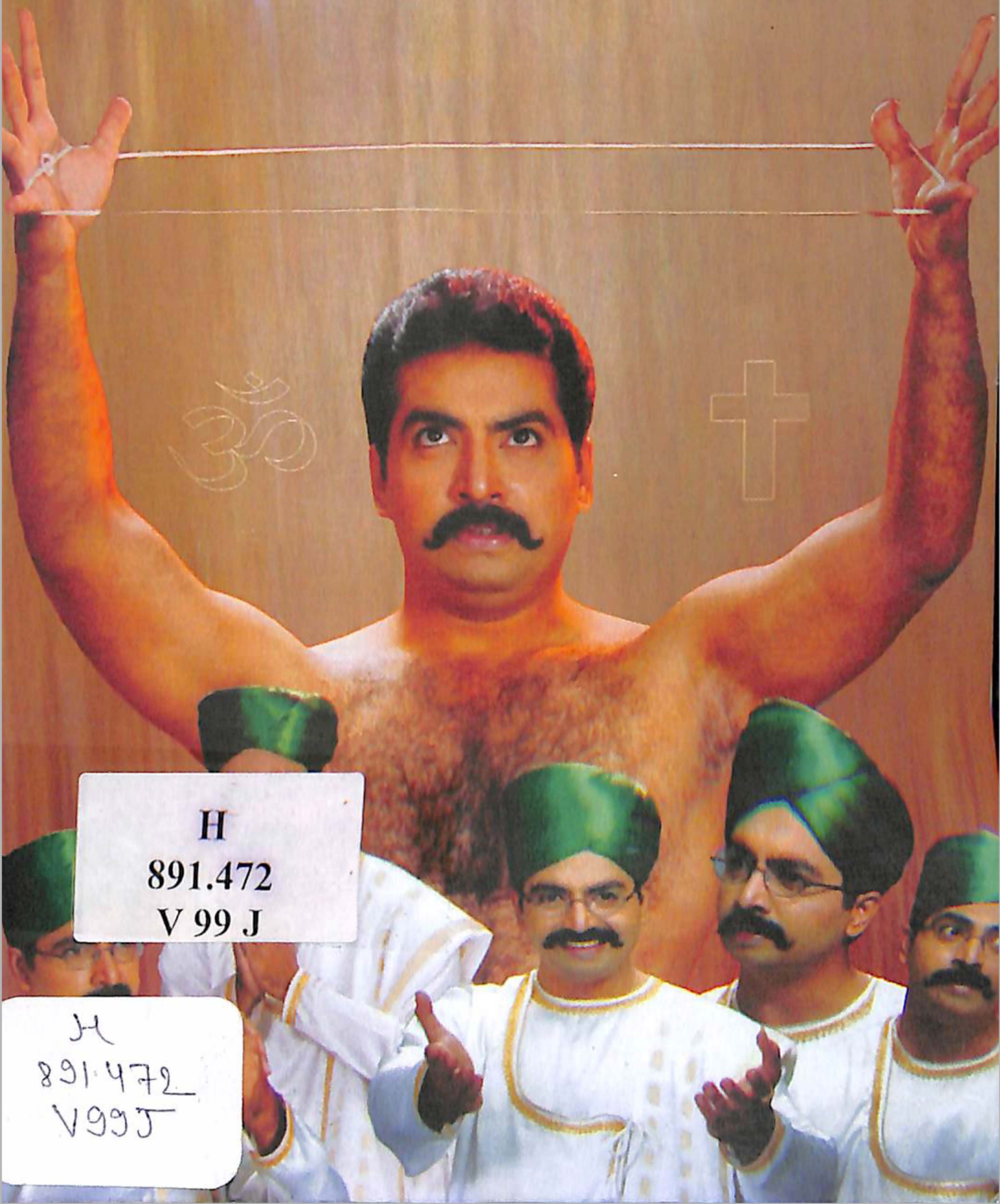

H
891.472
V 99 J

H
891.472
V99J

INDIAN INSTITUTE
OF
ADVANCED STUDY
LIBRARY, SHIMLA

जलपरदे से

सतीश व्यास

पार्श्व पब्लिकेशन
अहमदाबाद

Jalparde se

Two-act Play by Satish Vyas

प्रस्तुति के लिए संमति अनिवार्य
प्रथम आवृत्ति : २००७
प्रत : ५००
प्रकाशक-विक्रेता : बाबुभाई हालचंद शाह
पार्श्व पब्लिकेशन
निशा पोळ, झवेरीवाड, रिलीफ रोड,
अहमदाबाद-३८० ००१
दूरभाष : (०७९) २५३५६९०९

आवरण : जतन वेगड़ा

Library IIAS, Shimla
H 891.472 V 99 J
G 5781

कोपी राईट : लेखक

J
891.472
V99J

मूल्य : रू. ५०-००

मुद्रक : नवभारत प्रिन्टींग प्रेस,
घीकांटा रोड,
अहमदाबाद-३८० ००१.

G-5781
20-11-07

Type Setting
Rakesh Graphic
Rakesh H. Shah
A/1, Shivdarshan Appartment
Near Naranpura Char Rasta,
Naranpura,Ahmedabad-380 013.
T.No. (R) 27682197 (M) 9427802597

(सतीश व्यास)

गुजराती के सुप्रसिद्ध नाट्यलेखक । आप की नाट्यसमीक्षाएं भी प्रकट हुई है । 'पशुपति', 'अंगुलिमाल, और 'कामरू' जैसे आप के नाटक गुजरात में मंचस्थ हो चुके हैं । 'पशुपति' तो हिन्दी और अंग्रेजी में भी अनूदित हुआ है । 'नो पार्किंग' और 'तीड' में आपके लघु नाटक ग्रन्थस्थ हैं ।

श्री सतीश व्यास गुजरात विश्वविद्यालय, अहमदाबाद में गुजराती विषय के प्राध्यापक एवं अध्यक्ष रह चुके हैं । इन दिनों गुजराती साहित्य परिषद से जुड़ी भोगीलाल सांडेसरा स्वाध्यायपीठ के मानार्ह अध्यापक है ।

जलपरदे से

निवेदन

कवि 'कान्त' (मणिशंकर रत्नजी भट्ट) का जीवनकाल २०-११-१८६७ से १६-६-१९२३ तक का रहा। गुजरात के अग्रिम कवियों में वे गिने जाते हैं। मोरल फिलोसोफी के साथ वे स्नातक हुए। शिक्षक के तौर पर उन्होंने सूरत, वडोदरा, भावनगर में काम किया। भावनगर में प्राचार्य भी रहे। उनके जीवन की प्राथमिकता थी विशुद्ध स्नेहतत्त्व की खोज। ब्राह्मिन परिवार का यह सदस्य अचानक ईसाई धर्म अंगिकार करके सब को चौंका देता है। स्वीडनबोर्ग नामक चिंतक के विचारों से वे प्रभावित हुए थे और उसी क्रम में ईसाई धर्म की ओर बढ़े थे। धर्मपरिवर्तन के कारण उस जमाने में साहजिक रूप से ही उनका सामाजिक बहिष्कार हुआ। परिवारजनों ने और दोस्तों ने भी बहिष्कार किया। कान्त इससे बहुत व्यथित हुए।

ऐसे गणमान्य, बौद्धिक ऋजुतापूर्ण व्यक्तित्व वाले 'कान्त' के जीवन पर आधारित यह एकपात्रीय नाटक के गुजरात में अब तक २० प्रयोग हो चुके हैं और लोगों ने और समीक्षकों ने इसे बहुत सराहा है। यहां इस नाटक का हिन्दी पुनरुत्थान प्रस्तुत करते हुए हमें अधिक आनंद होता है। श्री बाबुभाई शाह और श्री आर.एम.वेगड़ा का मैं विशेष आभारी हूं। गुजराती में यह नाटक पुस्तक के रूप में प्रकट हो चुका है।

सतीश व्यास

आर/७, अभिलाषा कोम्प्लेक्ष,
राहुल टावर क्रोस रोड,
आनंदनगर रोड, सेटेलाईट,
अहमदाबाद-३८००५१.
दूरभाष : (०७९) २६९३१५३८

कृति की प्रस्तुति के बारे में.....

काल्पनिक चरित्र की भूमिका करनी सरल है, लेकिन वास्तविक चरित्र को रंगमंच पर निभाना बहुत कठिन है। यह मेरा सद्भाग्य है कि मुझे कवि कान्त की भूमिका करने को अवसर मिला।

एकपात्रीय अभिनय वैसे भी कठिन है। रंगमंच के खालीपन को भरने के लिए आंगिक वाचिक और सात्त्विक अभिनय का सामंजस्य अपनी तालीम की कसौटी कर दे। नाटक में रहे कथक और कवि को अलग करने के लिए मैंने कथक को जल स्वरूप में, नृत्यमुद्राओं में ढालने का सोचा। कान्त संगीतज्ञ थे इसी वजह से संगीतकार समीर रावल और नीरज परीख के पास शास्त्रीय संगीत पर आधारित पार्श्वसंगीत तैयार करवाया। करीब दो घंटे तक एक ही नट यह नाटक प्रस्तुत करे तब उसकी अभिनयकला की कड़ी परीक्षा होती है। गुजरात में और गुजरात के बाहर इसके बीस प्रयोग हो चुके हैं, जिस से लगता है कि यह परीक्षा मे मैं अनुत्तीर्ण तो नहीं हुआ ! मेरे लिये यह प्रयोग परिपूर्ण परितृप्ति का रहा।

कमल जोशी

जलपरदे से

सतीश व्यास

जलपरदे से

जलपरदे से

(प्रथम अंक)

(मंच पर एक बड़ा काव्यग्रंथ पड़ा है। अचानक वेदना-उदघोषणा जैसी मिश्र आवाजें ! ग्रंथ के पृष्ठों से एक व्यक्ति बाहर आता है। वह इस नाटक का कथक है।

कथक : हवाएँ गर्म पृष्ठों में,. हो मरुभूमि गर्म सी,
सदी के बाद भी देखो, वही जख्म, पीड़ा वही।
'कर्णावतीजनो आजे विचार करता हशे
कैंक बाबतने माटे शंका सौ धरता हशे'
फैल रही चहु ओर शाखाएं अंध राज की,
नहीं मालूम जायेगी कैसी ये रात आज की।

सुज्ञ हो, जानते हैं कि किसने शब्द ये कहे,
हां, हां, बोल रहे सच्चा, कवि वे ही कह गये।
यदि इसी प्रयोगार्थ ओर ही गांव जा पड़े,
बोलेंगे आप क्या बोलो ऐसा ही पूछते मुझे ?
पूछो तो.....
भृगुकच्छजनो आजे
सूर्यपूरजनो आजे

(कोई प्रश्न सूनकर)

हं ? हं ? था, मुझे था कि ऐसा प्रश्न पूछ कर
मेरी कसौटी कोई तो करेगा ही। प्रश्नोरा ?
भावनगर के ? हं...लो, तो, सूनो -
भावेणाना जनो आजे
जामेणाना जनो आजे
अरे, भाई
दिल्लीवाले
या
बम्बईया

चलेगा ? तो छोडो पत्तर....
नहीं, नहीं, छोडो इन्हें
लोकलाज रखनी पड़े
पत्तरे बत्तरें वाली
बातें तो छोड़नी पड़े !

क्या है कि इस छन्द में प्रत्यायन्‌ना कठिन है,
पुराना, सिद्ध है ऐसा, गुंजना ना कठिन है।
पहले जान लूं आत्मा, फिर दिखाउं आप को,
मैं कथक, नरेटर, भीतरी रूप 'कान्त' का।
ऊभय भूमिका मेरी, पीड़ा दूंगा न आपको
सिवा मेरे यहां कोई, दिखेगा नहीं आपको।
छोड़ दूं पघड़ी-·खेस मानना तब भीतरी,
धार लूं पघड़ी-खेस मानना तब बाहरी।
कहानी करता शुरु सूनना ग़ौर से ज़रा....
पूरी तो संभव नाहीं, ना कहनी अधूरी भी,
थोड़ी है कडवी खट्टी, थोड़ी है मधुरी भी।
सौराष्ट्रे लाठी पास में चावंड छोटा गांव है,
अपने कवि का मानो यशस्वी जन्मधाम है।
सडसठ अठारासौ नवम्बर की बींसवीं
कवि ने आंख खोल दी, उन के जन्म की तिथि।
उन्नीस्सों तेइस जून सोलवा दिन था तभी
छोड के इस भूमि को दिव्यलोके चल बसे।
नजूम, बैदई, विद्या तीनों में जो प्रसिद्ध है,
प्रश्नोरा जाति में, देखो, कवि का जन्मस्थान है।
नाम है मणिशंकर, पिता का नाम रत्नजी
तखल्लुस रखा 'कान्त' घरागुर्जरी रत्नजी !
चलेगी पद्य में बातें ? चलेगी ?

---

*दुपट्टा, बिछौरा जैसा मर्दाना उत्तरीय

जलपरदे से

पात्र को, आप को, मुझे रास न आया पद्य में
पद्य छोड़कर सद्य बोलेंगे कुछ गद्य में।
कुछ मिले छूटछाट मुक्ति भी बोलचाल में
कान को कष्ट ना ज्यादा, बुद्धि को भी नहीं ज़रा।

(कथक ने खेस-पघडी-चश्में लगा लिये है)

(स्थल : कवि का घर। कवि 'बुद्धिप्रकाश' सामयिक पढ़ रहे है।)

कवि : देखा ? देखा आपने ? ये तंत्री लोग भी कैसे हैं ? इस अंक के अगले अंक में मेरा एक काव्य प्रकाशित हुआ। यह मेरा प्रथम ही काव्य। मैंने भेजा वह 'बुद्धिप्रकाश' पर। काव्य का शीर्षक था 'मेरी, किश्ती' उस अंक में 'किश्ती' के बजाय 'कीरती' छपा था। मैंने तुरंत ये सुधार भेजा !

(पत्रलेखन)

तंत्रीश्री,
'बुद्धिप्रकाश'
वंदन।

आपने आप की पत्रिका के इस अंक में मेरा काव्य 'मेरी किश्ती' प्रकट किया उसके लिये आभारी हूं। एक क्षति के प्रति आप का ध्यान आकृष्ट करता हूं। दूसरे अंक में यह सुधार लेने की बिनती है। रचना में आपने 'किश्ती' के बजाय 'कीरती' लिखा है, उससे अर्थ बिगड़ जाता है।

आपका विनम्र,
मणिशंकर रत्नजी भट्ट

और ये दूसरा अंक। मुझे लगा कि लाओ, जरा देख तो लूं। देखा तो क्या देखा। सुधार देख कर संतोष तो हुआ, लेकिन तंत्रीजी,ने 'कीरती' का आद्य दीर्घ 'की' बदल कर ह्रस्व 'कि' किया। 'कीरती' का 'किरती' ही रखा ! हाय, अभी तक गुजराती के तंत्रीलोग अरबी-फारसी समझते नहीं है ऐसा ही मुझे तो समझना चाहिए न ? बाद में मैंने भी यह प्रयास छोड़ दिये। कविता लिखने के नहीं, ऐसे सुधार भेजने के! गलत तो गलत, अपना सुधार छपा इसलिये आनंद हुआ, अपना तो यह प्रथम ही काव्य था। कुछ शब्द सुनेंगे इस काव्य के ?

देख नहीं सकता अंदर
कैसे देखूँ तब बंदर ?
मौजे तूफान में मैंने लगा दी है किश्ती ।

है, कश्मकश्म है सभाजनों, सामाजिकों, कश्मकश्म है । बहुत घूंटन है भीतर । भीतरी उछाल से, लगता है कि मैं डूब जाउंगा । मुझे पहले से ही ऐसा हो रहा है । बंदरबार, चांदतारे, अंदरद्धार कुछ भी समरस नहीं लगता । सम पर, आपकी कसम आ ही नहीं सकता । यह कौन, कैसा ताल दे रहा है जो मुझे सम पर आने या ठहरने नहीं देता ....

चारों ओर गहन वन ये घिरता जा रहा है..... मुझे ये वनबादल पहले से ही खींच रहे है । भीतर का निर्झर खलखल करता बहता जा रहा है । प्रकृति का यह कल कल निनाद, स्वर की प्रथम ताक़त मैंने सुनी मेरे दादाजी के प्रभाती स्वर में । 'ए जागने जादवा' के झूलना छंद का लय अभी मेरे मन में ज्यों का त्यों है ।

(पार्श्व संगीत के साथ 'जागने जादवा' का भजन)

मांगरोल-मोरबी में मेरी पढाई हुई । मोरबी में मेरा परम मित्र था प्रभाशंकर। सर प्रभाशंकर पट्टणी के नाम से जो बाद में ख्यात हुए ! लेकिन उस वक्त तो 'परभा'! वह दीवान बना तब उसने मुझे संभाला भी बहुत ! हां, काम लेता था कुछ ज्यादा ! दोस्त और जातिबंधु । इसलिए मुझे कुछ ज्यादा ही काम करना पड़ता । लेकिन उसका मित्रऋण भुलाया नहीं जा सकता ।

बाद में तो अंग्रेजी पढ़ने के लिये मुझे गोंडल-राजकोट भेजा गया । मेरी उम्र उस वक्त दस साल की । मेरी कोठरी का दरवाजा खटखटाया जा रहा है । मैं देखता हूं कि परिवार के दो-तीन सदस्य दरवाजे पर खड़े हैं ।

(दस साल के किशोर की तरह अभिनय)

किशोर : आइए ! क्यों ऐसे सब साथ में आये हो ? क्या ? अभी आना है मुझे ? लेकिन है क्या यह तो बताओ ? कुछ हुआ है क्या ? घर जाना है ?

(कवि के घर का दृश्य)

ये सब लोग बाहर क्यों जमा हुए हैं । पुरुषवर्ग सफेद वस्त्रोंमें है और सब स्त्रियां काले वस्त्रों में है ? माँ कहां है ? मैं उसे मिलना चाहता हूं ।

(एक कोने में बैठी माँ के गोद में सर रखकर)

माँ,माँ, यह क्या हुआ ? अरे, अरे, इतना जोरों से क्यों रोने लगी ? कहो तो सही, हुआ है क्या ? क्यों रोती हो ? क्यों, रो रहे है यह सब लोग ? क्या ? पिताजी ? गये ? नहीं, नहीं, माँ, नहीं । अभी तो मुझे उनसे संगीत सुनना बाकी था ! शतरंज भी सिखना बाकी था । नहीं, माँ, नहीं, वह ऐसे नही जा सकते ! आप सब लोग झूठ बोल रहे है.... पिताजी तो....

(कोई उसे उठाकर दूसरी जगह ले गया । दूसरे कोने में चुड़ियां तोडने का और बींदिया हटाने का दृश्य)

किशोर : नहीं, नहीं, न करो ऐसा ? न तोड़ो उसकी चुड़ियाँ ! अरे, माँ, ना बोलो ना । इन सबने तुझे क्यों पकड़ रखा है ? नहीं, नहीं, मेरी माँ को चुभेगा ? यों उस के हाथ को ज़मीं पर मत झटकाओ । और ये क्या कर रहे हो ? उस की बिंदी ? बिना बिंदी की माँ को मैं कैसे देख पाउंगा ? उस के माथे पर शोभित वह गुलाली अरुण सी बिन्दी । न करो यह अत्याचार मेरी माँ पर, न करो, रोको....

(दृश्यपरिवर्तन)

कथक : **था वो चौदहवा साल, सावरकुंडला स्थले**
जटाशंकर की पुत्री, नर्मदा से सगाई की
शादी संबंध भी हुआ, गृहस्थाश्रम हो गया,
सुख में दिन जाते हैं, धीरे स्नेह पैदा हुआ

(कवि का शयनखंड । कवि जूही के फूलों को शैया पर बिछाते हुए ....)

कवि : रोज़ ताजे जूही के फूल ! आज अपनी नौंवीं रात्रि । तुम्हें लगता होगा कि यह रोज फूल क्यों लगाते हैं ... है न ? अरे न'दी... अपनी तो रोज मधुरजनी.... और मुझे यह जूही कुसुम बचपन से ही बहुत भाते हैं । रात को उसकी मदिर मदिर गंध मेरे तनबदन को तरबतर कर देती है ! और यह तेरे नयन भी तो कुसुम की तरह शुभ्रतर है न'दी, नमणां नमणां....

नयन नमणां
ग्रीवा धोळी
ललाट सुहामणुं

ऐसे निर्मल, शुभ्र नयन आज तक मैने नहीं देखे । समझ नहीं पा रहा कि यह जूही के पुष्पों का प्रतिबिंब तुम्हारे इस नयन में पड़ रहा है या इस

नयनों का प्रतिबिंब जूही के पुष्पों में ? मैं जैसे पूरी तरह खींचता चला जा रहा हूं इन नयनों में। इस पुष्पशैया से तो तुम्हारी इन दो नैनों की शैया ज्यादा मुलायम लगती है न'दी !

'नहीं ते कंई दोषभर्या नयनो:
पण निर्मल नेहसरोवर सारस
युग्म समां परिपूर्ण दयारस:
ए जख्मी दिलनां शयनो !'

मेरे सभी जख्म, मेरे सब अनिष्ट यहां परिप्लावित होते हैं ! अहो, 'सरसिज सुकन्या! तुम्हारे अंग अंग में सारस अर्थात् कँवल खीलें हैं। नयनकमल, करकमल, चरणकमल, वक्षकमल! तुम पूरी तरह प्रफुल्लदलपद्मश्री। साक्षात् पद्मिनी ! अहोभाग्य मेरे ! धन्यभाग्य मेरे कि मुझ गरीब के घर तुम्हारे जैसी श्रीमती पधारी ! तुमने मुझे श्रीमद् किया न'दी, आओ इस पुष्पशैया पर, आओ....

(चौंकना, जगना)

मुझे लगता है कि मेरा यह सुख लंबा नहीं चलेगा ! पिताजी, आप क्यों याद आ रहे है इस मध्य रात्रि को ! कल न'दी जायेगी। यह घर फिर सुना हो जायेगा ! पिताजी, आप के जाने के बाद यहां सूनापन ही सूनापन था। न'दी के आने से कुछ भरा भरा सा लगा। लेकिन पिताजी, एक प्रश्न तो होता ही है कि जिसे स्नेह कहते हैं वह क्या यही है ? आपका, माँ का मेरी ओर जो है वह स्नेह नहीं ? न'दी की ओर जो है वह तो आकर्षण या मोह ही नहीं ? तो स्नेह, सच्चा, गहन स्नेह कहां? न'दी सुंदर तो है, लेकिन क्या स्नेहमयी है ? पिताजी, मुझे ऐसे संशय क्यों होते हैं ? क्या ऊसका स्नेह सदैव टिकेगा ? क्या वह कल जानेवाली है इस लिए मुझे यह संशय हो रहे है ? न जाने ! मेरे भाव में तो कुछ कमी नहीं आयेगा न ? पिताजी, स्नेह सागर में तो जुवारभाटा हो नहीं सकता न ? वह तो सदा सभर सागर ! चलो जीव, कल की चिंता कल पर छोडो। अभी तो चैन से सो जाओ....

(नर्मदा के चेहरे को देखते है। अपने हाथो में चेहरा लेने का प्रयत्न। ठहरना। हाथ हटाये) जग जायेगी। निंद में भी कितनी निर्दोष, निर्मल, दिखती है !

नयन नमणां
ग्रीवा धोळी
ललाट सुहामणुं

(तीन चार बार गुनगुनाते कवि सो जाये)

(दृश्यपरिवर्तन)

कवि : कभी कभार में घर से न'दी को कहकर जाउं कि दस बजे के करीब़ घर आ जाऊंगा। लेकिन दोस्तों के साथ देर हो जाती।

बरसात का मौसम है। रात के बारह बज रहे है। मैं न'दी को पलंग से सर टिकाये बैठी देख रहा हूं... जैसे कोई वासकसज्जा !

"नाना सादा शयनगृहमां स्वच्छ दीवो बळे छे
विद्युत्वल्ली प्रबळ चमकी ज्योति साथे भळे छे,
साहित्यो कैं बहु नहि दिसे एक पर्यक मात्र,
थोड़ा झीणां रजनीवसनो पासमां वारिपात्र !"

न'दी, न'दी, देवी, क्षमा करना ! मुझ से देर हो गई ! क्या ? "मुझ में ही कोई माल नहीं"

नहीं, नहीं, ऐसा मत बोल ! मुझे, कहे अनुसार, वक्त पर आना था, लेकिन दोस्तों के साथ बातो में वक्त का खयाल नहीं रहा। चलो, चलो, जल्दी दूध दे दो ! क्यों इस तरह मौन धारण करके खड़ी हो ? ओहो.. अब नहीं, नहीं होगी देरी बस। बोल तो सही कुछ ! हें ?

'प्रेम छे एटला माटे प्रेम मागी शकुं नहीं' अरे वाह, तुमने तो जैसे मेरी ही बात कह दी न'दी ! न'दी चलो लाओ, जल्दी जल्दी दूध लाओ, मैं पी लूं। (दूध पीना)

और यह अपने जूही के फूल ! भले ही बारह बजे हो ! अरे क्यों न प्रात:काल हो, सोने से पहले जूही के फूल शैया पर रखने के ही ! चलो, यह पलंग थोडा ठीक कर ले। पहले झटक ले ! धूल का एक कन भी नहीं होना चाहिये। हरे रंग की चद्दर पर सफेद रंग के फूलों की बिछात ऐसी तो रमणीय लगती है ! हां सच कहा तुमने। मुझे हरा रंग पसंद है। इस लिये तो पघड़ी भी हरे रंग की ही पहनता हूं। लेकिन अंगरखा तो श्वेत ही होना चाहिए और खेस भी।

चलो, अब सो जाये इस मखमली सुगंध के बीच। अरे हां, न'र्दी, याद आ गया। कल महाराज भावसिंहजी भोजन के लिये पधार रहे हैं याद है न तुम्हें ? हां... तो चलो... विश्राम करें।

(अंधकार-प्रकाश)

कवि : न'दी, क्या बना रही हो आज ? महाराज को तो चुरमे के लड्डु बहुत अच्छे लगते हैं और सेव-टमाटर की सब्जी। ऐसा करो, लड्डु तो मैंने बना रखे है, तुम टमाटर समारो। मैं इस तवे में सेव बना लूं।

(सेव तैयार करने का अभिनय)

दाल में तमालपत्र का तड़का देना और मेथी ज़रा देर से डालना ताकि काली न हो जाये और तड़के में जरा जीरा भी डालना। गुड नहीं डाला न ? महाराज मीठी दाल पसंद नहीं करते। वाह, तुमने तो सब कुछ याद रक्खा है न ?

(दरवाजा खटखटाने की आवाज)

पधारिए, पधारिए, महाराज ! आपके आगमन से हम धन्य हो गये ! पधारिए ! इस पलंग पर बैठिऐ। महक आ रही है ? महाराज महक तो नर्मदा के हाथ की रसोई की आ रही है। मैने क्या बनाया है ? अरे चख कर बताना कि क्या मैंने और क्या नर्मदा ने बनाया है। आप तो उस्ताद हो। पहले कुछ बजाउं ? क्या सुनना चाहते हो ? सितार ? अवश्य सुनाउं। कौन सा राग ? केदार ? लो, तब सुनो केदार।

(केदार राग में तीन मिनिट तक सितारवादन)

चलो, चलो, भोजन ठंडा हो जाएगा। लो, महाराज, आप यहां बैठिए, पैर के नीचे यह ठीचनिया रक्खो। लो, अब इस बाजौठ पर यह रक्खा आपका थाल। प्रसाद लो महाराज, हां, हां, मैं भी बैठता हूं न। (भोजन करते करते) बहुत सादा भोजन है महाराज। अच्छा, अब ये बताओ, कि किसने क्या बनाया है। बिलकुल सच्ची बात बताई महाराज, लड्डु तो मैंने ही बनाये हैं, पर दाल हम दोनों ने मिलकर बनाई है महाराज। लड्डु लो न महाराज'... हां, हां, लो, अरे नर्मदा, महाराज को थोड़ी सब्जी और दो। तुम्हारे हाथ की बनाई सब्जी महाराज को ज्यादा अच्छी लगी। लो महाराज यह सब्जी लो।

लो, मैं आप के हाथ पर पानी डालता हूं. धो लो हाथ महाराज ।

(महाराज जरा जल्दी में)

(हाथ धोने के बाद साफ करने के लिए कुछ दिखाई नहीं देता । महाराज कवि के खेस से अपना हाथ साफ करते है । कवि के चेहरे पर व्यथा, नाराजगी और क्रोध के भाव)

बहुत जल्दी में हो महाराज ? अच्छा, अच्छा, लेकिन एक काम करो। यह खेस अब से आपका । इसे साथ लेते जाओ । आपने अपना समझ कर इसी से हाथ पोंछे इसका मुझे आनंद है, पर अब तो इसे आप ही रखो ।

(अंधकार-प्रकाश)

कथक : कवि ऐसे स्वमानी थे । घर में मी छोटी छोटी बातों का ध्यान रखते थे । एक बावाजी नियमित रूप से कवि के खत पढ़ा करते थे । कवि को आश्चर्य होता था कि ऊनके खत कौन पढ़ता है ! एक दिन की बात है । कवि चूपचाप कौने में खड़े खड़े देख रहे है ।

कवि : ओहो ! बेटमजी, बावाजी ! अब मुझे पता चला कि मेरे खत कौन पढ़ता था । तेरी तो ये आदत मैं छुडवा दूंगा ।

(डंडा लेकर मारने लगे)

हरामखोर, मेरे खत पढ़ता है, मेरे ? शर्म नहीं आती यूँ किसी के खत पढ़ते हुए । कुछ विवेक जैसा है कि नहीं ? रांड बांझ के, खबरदार, अब यहां पांव भी रखा तो ! निकल यहां से । तेरा मुंह काला कर । साला पाजी, हरामी।

कथक : **दूजा किस्सा ज़रा सूनो, गर्भवती थी नर्मदा**
बावर्ची एक रक्खा था, कवि का ध्यान सर्वदा

कवि : अरे वाह, महाराज, आप तो खरे हो ! यूँ सब चीजें चखकर ही देते हो? हां, चखनी पड़े कभी कभार, लेकिन चख कर देने वाला अच्छा बावर्ची नहीं कहा जाता ! और चखने का तो थोडा ही होता है, तुम तो पूरा मुठ्ठ भर के मुंह में ठूस रहे हो । और बाद में ऐसा तुम्हारा जूठा हमें खाने का ? ऐसा गंदा ? नहीं, गंदा नहीं ऐसा ? ब्राह्मिन का खाया शुद्ध माना जाता है ?अरे, ब्राह्मिन तो मैं भी मूआ हूं । ले, तुझे एक बम्मनिया थप्पड ही लगा दूं । शुद्ध ! अति शुद्ध । अब निकल यहां से । मुझे राज्य की नौकरी से वक्त नहीं मिलता इस लिए तेरे जैसे को खाना बनाने रखना

पड़ता है, वरना खाना तो मैं ही बना लेता । पर, हां जाएगा । सुबह जरा जल्दी उठकर खाना बनाना पडेगा इतना हीं न ? लेकिन तेरे जैसे पेटू बावर्ची को तो मैं नहीं चला लूंगा यह बात निश्चित ।

चल, भाग यहां से और भीख मागता फिर घर घर। भर लेना अपना पेट किसी धर्मशाला में । जा । भाग ।

(नर्मदा के करीब आके)

कवि : न'दी तुम बिलकुल फिकर मत करना । यह खानेवाली बात तो मैं नीपटा लूंगा । मैं तुम्हें भिन्न भिन्न व्यंजन खिलाउंगा । तुम्हारे सब दोहद मैं परिपूर्ण करुंगा । तुम कहती जाना, मैं बनाता जाउंगा ।

कथक : **दाम्पत्यस्नेह मैं देखो, कवि का चित्त सिक्त है,**
भाटा-जुवार है नाहीं, स्नेहसागर स्निग्ध है ।
सुनहरा दिन आ चुका, नर्मदा मुक्त हो चुकी
पावनी पुत्र तो जन्मा, 'प्राणलाल' सभी कहे ।
कभी खेले, खिलाये भी, सिखाये गान प्रेम से,
न डांटे, प्यार से बोले, सिखे संस्कृत चाव से ।
कवि को लगता है कि प्रेम की एक कैद है
नर्मदा को मनाते है, ऐसा ही कुछ सोच कर ।

कवि : न'दी, तुम और तुम्हारा घर अब मुझे बंधन से लगते है । मुझे यह अच्छा भी लगता है, लेकिन मुझे तो सारी दुनिया से नाता जोड़ना है, प्रकृति के प्रेम का अनुभव लेना है ।

"वस्यो हैये तारे
रह्यो ए आधारे
प्रिये ! तेमां मारे
प्रणय दुनियाथी नव थयो

दोनों प्रिय हो तुम मुझे । तुम और प्राणलाल दोनों । मेरे अस्तित्व के अभिन्न अंग हो तुम दोनों, फिर भी मुझे लगता है कि कुछ कम है ! पिताजी की गोद में जो शांति मिलती थी, वह मुझे ओर कहीं नहीं मिलती । बुरा मत मानना । यह फरियाद नहीं है । तुमने तो मुझे बहुत चाह दी है, लेकिन मुझे भीतर ही भीतर कुछ गहन स्नेह की अपेक्षा है । दिल के सभी कौने सभर नहीं

होते। पितास्मरण, न'दीसहचार और प्राणवल्लभता होते हुए भी एकाद कोना तो खाली ही रहता है। लगता है कि खुद ईश्वर के राज्य में भी कुछ अधूरापन है। वह खुद के सिवा सभी को अधूरा रखता है, ताकि खुद की महिमा ज्यों कि त्यों रहे। देखो, मैं उसे दो तीन उदाहरण देकर समझाउं, जैसा कि चक्रवाक और चक्रवाकी का युगलभाव। दिनभर साथ साथ, लेकिन दिन ढलते ही अलग अलग, सांझ ढलते ही चक्रवाकी की आंख से अश्रुबिंदु टपकने लगे...

(कवि अब चक्रवाक का अभिनय करे)

चक्रवाक : हां, हां, भीरु श्यामा, यों नयनमें आ रहे अश्रु क्यों पोंछती हो ? दिन ढल रहा है इसी लिए न ? अरे, भोली, कल फिर सुबह होगी ! रात्रिविरह का देखा जायेगा। यह बचीकूची शाम तो निहार ले ! वे वृक्ष कितने सुंदर है। जा, वहां छूप जा। हमारा छुप्पाछुप्पी का खेल शुरु करे ! तुम छुप जाओ वहां उस वनराजी में। मैं तुझे ढूंढने आता हूं।

कहां गई ? क्यों दिखाई नहीं देती ? कहां है (चांच में चांच, पंख में पंख लगायें) देख, देख, हमारे साये कैसे एक और अभिन्न बन गये। हम भी दो नहीं, बलकि एक !

प्रणयनी पण तृप्ति थती नथी
प्रणयनी अभिलाष जती नथी

हाय ! यह रक्तद्युति उडने लगी और अंधकार के साये प्रसरने लगे... हवा शीतल बनने लगी। जाग चक्रवाकी, जाग। मोहनिद्रा में से जाग। देख ये सामने विधि साक्षात् अंधकारपाश लेकर खड़ा है। चल, थोड़ा उड़ ले ऊपर ताकि उजाला बढ़े।

अहो, कैसी रक्तिम बदरियां बह रही है। लेकिन पल दोपल और बाद में घोर अंधेरा। क्या ? वहां जाना है जहां सूर्य सदैव हो ? पगली रे पगली ! ये कैसी स्नेहविवशता ?

लांबा छे ज्यां दिन प्रिय सखी
रात्रिये दीर्घ तेवी,
आ अैश्वर्ये प्रणय सुखनी
हाय, आशा ज केवी ?

(चक्रवाक की भूमिका में से निकलना)

कवि : अब में तुम्हें दूसरा उदाहरण दूं। कच और देवयानी का।

(कवि अब कच की भूमिका में)

अरे! यह मैं किस की आवाज सुन रहा हूं। 'कहां हो कच ? सखे कहां हो ?' हां, यह तो देवयानी की आवाज़ है। मुझे ही ढूंढ रही है। ऐसी चांदनी रात में वह बन में कैसी अकेली दौड़ रही है। ऊपर चांद चल रहा है और देवयानी के सर पर मणि भी चमक रहा है। चन्द्र का मणि में प्रतिबिंब पड़ता है। मानो देवयानी की गति के साथ साथ चांद भी दौड़ रहा दिखता है। जैसे कोई बालहिरनी दौड़ रही हो! जैसे कोई करिणी सूरसरित में तैर रही हो! लाओ, उसे ज़रा रोक कर पूछुं कि क्यों इतनी आवाज़ कर रही हो। ऐसी सूनी रात में ऐसे घोर जंगल में ?

देवी! देवयानी! कहो, क्या है ?क्यों ऐसी अधीर हो गई हो ? अरे, यूँ बूँद आंसू गिराती हो ? तुम तो वीरांगना हो और ये आंसू! अच्छे नहीं लगते ये आंसु ? चलो, मैं पोंछ लूं। (उत्तरीय से पौंछने का अभिनय) हां, हां, ये मेरी चिबूक क्यो ऊँचे उठा रही हो ? आकाश में ? चांद ? वह दिखाना चाहती हो ? अरे, मैं तो चांद को देखूं कि तेरे मुखचांद को ? कि ये चन्द्रमणि को? ऊपर-नीचे सर्वत्र स्नेहलोकमय आलोक व्याप्त है। मैं मेरे अतिज्ञान से नहीं देख पाया, तो तुमने दिखाया। देवी! मैं तो स्नेहवंचित था, तुमने स्नेहअंकित किया। लेकिन हाय, मुझमें यह स्नेहपात्रता है ? (कवि का अभिनय से निकलना)

कवि : कच भी देवयानी को स्नेह नहीं दे पाया। वे दोनों स्नेहवंचित रहे। न'दी, इसी लिए, मुझे हमेशां लगा है कि परिपूर्ण स्नेह शायद कल्पना ही है। कभी कभी तो तुम जब सो रही होती हो तब मुझे सहदेव की तरह ही होता है कि 'प्रिये स्पर्श करुं शुं हुं, अधिकार जरा नथी' तेरे बिखरे हुए बालों के बीच रहा वदन सुधाकर देखकर मुझे बहुत बार लगता है कि 'थनार वस्तु नव थाय अन्यथा' हाथ में स्नेहपियाला हो और होठ तक आ ही न सके ऐसा लगता है।

न'दी, क्षमा करना। आज जरा शीशी निकालता हूं। थोडी सी भंग लूंगा। बहुत बेचैनी सी लग रही है।

(भंग लेने के बीच)

और एक उदाहरण दूं स्नेहविवशता का: राजा पाण्डु और माद्री का।

(पाण्डु का अभिनय)

पाण्डु : अरे, अरे, अभी तो ज़रा विहार करने निकला और यह 'नहि नाथ, नहि नाथ, न जाणो के सवार छे' बोलने लगी तुम ? मुझे पता है कि अभी घोर अंधेरा है और सुबह होने में बहुत देर है। मैं स्नान करने नहीं निकला। ज़रा नींद चली गई तो यहां वहां धूमने निकल पडा। तुम चैन से सोती रहो।

(कुछ देर बाद)

निशाचर की आवाजें आ रही हैं। यह झील कितनी शांत है ? माद्री सरोवर ! पूर्व दिशा से हलकी सी लालिमा फूट रही है। अभी अरुणोदय होगा। (कोयल की आवाज) बसंत ! बसंतऋतु चल रही है। पलाश खिल रहे हैं। आम्रमंजरियां उन्मत्त बन कर लहर रही है। लाओ, स्नानविधि संपन्न कर लूं। (स्नान)

समग्र सृष्टि सद्यस्नाता दिख रही है। सर्वत्र सुंदर सुंदर, हरा हरा, गीला गीला लग रहा है। लेकिन मुझे किसी और सौन्दर्य से क्या लेनादेना ? मुझे तो मेरा तप ही साथी, तप ही संगी।

(वस्त्रपरिधान करे)

लाओ, जरा देखूं तो सही कि माद्री जग गई कि नहीं ! (पर्णकुटि में जाकर) कुंताजी कहां गई ? शायद पुष्प लेने गई होगी ? माद्री, तुम अकेली हो ? और, कितनी सुंदर दिख रही हो। पतले से वल्कल को अंग पर रखा है। वनवास ने भी लावण्य कम नहीं किया। बल्कि और निखारा है ! वाह, ऊठ माद्री, उठ देख, बाहर अरुणप्रभा और उससे भी अधिक बसंतप्रभा कितनी खिल उठी है। चल, बाहर चल विहार करने। देख, देख, समग्र सृष्टि कैसी बसंतस्नान कर रही है। देख, सुन, सुनाई देता है कोकिलस्वर ? वह पीलक कैसे अ... साथी के साथ नर्तन कर रहा है ? और वह देख, वह मत्त मयूर ! वायु में ... भी मंद मंद बंसरी के सूर सुनाई दे रहे है।

(बंसरी के सूर)

"धीमे धीमे छटाथी कुसुमरज लई डोलतो वायु वाय,
चोपासे वल्लिओथी परिमल प्रसरे नेत्रने तृप्ति थाय,
बेसीने कोण जाणे कयहीं परभृतिका गान स्वर्गीय गाय,
गाळी नाखे हलावी रसिक हृदयने, वृत्तिथी दाब जाय."

ओर, माद्री, यह कुछ, सब कुछ, मुझे विवश कर रहा है। मेरी वृत्तियों का संयम टूट रहा है। लगता है कि इस पंचमवृष्टि में फिर में स्नान कर लूं। प्रिया, माद्री, देवी, सखी, ओह प्रिया, प्रिया, प्रिया तेरे हाथ में सर्व हाय रे, त्वरा से देह जोड दे यह तो सहा नहीं जाये रे। नहीं नहीं यह नही नहीं नाथ, नहीं नाथ नंहीं सूनना मुझे। सभी विचार छोड दे अब (हाथ फैला कर) रे, हाय,स्पर्शसुख प्राणसखी, अभी दो - दो- दो

(हाथ और आगे बढ़ा कर आलिंगन दे रहा हो ऐसा दृश्य)

कवि : न'दी,माद्री भी नरेन्द्र के हाथों में ढल तो गई, लेकिन पाण्डु को उस स्नेह की अनुभूति हूई ? उसे वह अंतरस्नेह मिला ? हमदोनों भी परस्पर इतना प्रेम कर रहे है लेकिन मुझे लगता है कि प्रेम से, चाह से, मोह से स्नेहतत्त्व कहीं ज्यादा बलवत्तर है। न'दी तेरी चाहना में, प्राणलाल के वात्सल्य में मैं उसी स्नेहत्व की खोज करता हूं। मिलेगा, अवश्य मिलेगा एक दिन मुझे वह स्नेहतत्त्व, परम तत्त्व, परम कृपा। अभी थोडा विश्राम कर लें। तुम सो जाओ। मै (बाईबल हाथ में ले कर) ज़रा यह बाईबल पढ लूं।

(रेकोर्डेड भाग)

प्यारे ! हम सब एक दूजे पर प्रेम रखें, क्योंकि प्रेम देव से है और जो प्रेम करता है वह देव से ही पैदा हुआ है और देव को पेहचानता नहीं है क्योंकि देव ही प्रेम है। किसीने देव को देखा नहीं। यदि हम एक दूसरे पर प्रेम रखें तो देव हम सब में रहता है। उसका प्रेम हम में संपूर्ण रूप से रहा है। हम उसमें रहते हैं और वह हम में। प्रेम में भय नहीं है। संपूर्ण प्रेम भय को दूर करता है। आमेन।

(दृश्य परिवर्तन)

कथक : **कवि को छोड़ कर पत्नी, स्वर्ग में ये चल बसी,**
कवि बेबाक होते है, चली गई सभी खुशी.
न सुझे कोई चारा भी, न सूझे बात कोई भी,
उदासी के ख़यालो में, कवि आत्मा डूबी हूई.

कवि : (भंग पीते पीते) न'दी, यूँ, ऐसे मुझे अचानक छोड कर चली गई ? मुझे सेवा का मौका तो देना था ! मैं तुम में बंधा रहा थां ऐसा मैंने कहा था इसका मतलब यह तो नहीं था कि तुम मुझे यूँ बंधनमुक्त कर के चली जाओ। अब तो मैं और प्राणलाल अकेले पड़ गये। हमारे दिन तो अब दुष्कर बन जायेंगे!

इन लोगोंने मिल कर मेरी दूसरी शादी रचाई है। हां, एक सुख है। इस का, इस दूसरी का भी नाम अकस्मात से नर्मदा ही है। लेकिन इस अकस्मात में भी मुझे कोई संकेत नज़र आ रहा है। मुझे तुम नये रूप में मिली हो ऐसा लगता है। लेकिन जैसे ही वह नर्मदा मेरे करीब आती है कि मेरी द्विधा शुरु होती है! देख, वह आ रही है। उसके पैरों की आहट सुनाई देती है। देखना, मैं अवश्य रो पडूंगा। मेरा मुझ पर ही कोई काबू नहीं रहा। मैं जैसे मुझ में हूं ही नहीं। देख, वह आ रही है। (नर्मदा के साथ बातें) 'रोना नहीं' ऐसा कर रही हो न तुम? नानी। न'दी तो न'दी थी... प्रियतमे, तुम कहां चली गई?

प्रिया, प्रियतमा गता, जगत सर्व झांखुं थयुं'
गयुं, सुख गयुं बधुं, न पण जीववानुं गयुं."

सब झूठे आश्वासन! न्हानी मुझ से तुम को न्याय नहीं मिलेगा। कैसा कर्तव्य? हं। हां, तुम सेवाभाव से जुड़ी हो यह सच है, लेकिन मैं उसे भूल ही नहीं सकता। 'नयन नमणां, ग्रीवा धोळी, ललाट सुहामणुं'

(रोना-जोरों से रोना)

(नर्मदा पानी का ग्लास लेकर खड़ी हो ऐसा अभिनय)

'नहि स्वजन ते सखी, स्वजन एकली तुं हती,
सहस्त्रशतशल्यमां हृदयनी पथारी थती'

शैया तैयार रखो न्हानी, लेकिन शतसहस्त्र शूलियों की, कांटे की शैया तैयार रखो! इस शरीर के रोम रोम में शूलियां चुभे और लहु बहे ऐसी ही मेरी कामना है। तुम प्रयत्न कर रही हो मुझे सांत्वना देने के लिए लेकिन यह हृदय किसी तरह मानने को राजी ही नहीं है इसका क्या?

"वदने बहु नीर भराय सखे
तनु चेतन सर्व हराय सखे
जलपरदे से सब कुछ देखूं
नहीं दिखता कहीं नेह सखे"

तुम विश्राम करो न्हानी, मेरी नींद तो अब न'दी ले गई। जाओ, प्राणलाल जाग रहा होगा। उसे सुला दो।

हां, हां, मेरा चित्त शांत ही है। जाओ, मैं भी कुछ हलका सा हो कर नींद लेने का प्रयत्न करुंगा।

(भांग लेना। बाईबल ले कर पढ़ना)

"मैं जानता हूं कि वधस्तंभ पर लटकाये हुए ईसु को आप ढूंढ रहे हो। वह यहां नहीं है। क्योंकि उसके कथन अनुसार वह उठा है। आओ और जहां प्रभु सोया था वह जगह देखो और पहले जाकर अपने शिष्यों से कहो कि मरा हुआ वह उठा है। ईसु उनको कहता है : डरो मत, जाओ, मेरे भाईयों को कहो कि वे गालील में जाये और वहां वे मुझे पाएँगें।"

पुनरुत्थान ! क्या यह सच होगा ? यह बात तो नई है। पुनर्जन्म नहीं, पुनरुत्थान ! पुनर्जन्म तो कोई भी योनि में हो सकता है, कुत्ते, बिल्ली बंदर जैसा। पर यह तो ज्यो का त्यों ही उत्पन्न होता है, वापस आता है ! तो क्या न'दी मुझे जैसी कि तैसी ही वापस आकर मिलेगी ? यदि ईसु कहते है वह सच हो तो ऐसा ही होना चाहिए ! मुझे भी यह पढ़ते पढ़ते ईसुबचनो में श्रद्धा बैठती है कि नर्मदा का पुनरुत्थान होगा। न'दी न'दी आओ, कहां हो तुम ?

(न'दी जैसे प्रगट होती हो !)

अरे वाह ! न'दी ! 'नयन नमणां, ग्रीवा धोळी, ललाट सुहामणुं !' आओ नदी, इस शैया पर आओ ! जूही के फूल ? अरे, लगा दूं अभी ? तुम आओ और मैं जूही के फूल न लगाउं ऐसा कभी हुआ है क्या ? चलो, लो, देखो ? मैंने जूही की चादर फैला दी है यहां, आओ! कहां चली गई थी तुम मुझे यूँ निराधार अकेला छोड़ कर ? प्राणु भी कितना अकेला पड़ गया था तुम्हारे बिना ? अच्छा, पुनरुत्थान से आई हो ? आओ, आओ, तुम भी मानती हो ईस पुनरुत्थान को ? यही तुम्हारा द्विजत्व ? तो मैंने यह यज्ञोपवीत धारणकर रखा है वह क्या गलत है ? निकाल ही दूं यह सूत्र !

(यज्ञोपवीत निकालने का अभिनय।)

ठहरो ज़रा ! मैं इस उपवीत को तुलसी के पास छोड़ दूं। अब तुम आ गई तो मुझे चैन आ गया, सुरुर आ गया। अब मत चली जाना कोई चाल चल कर। रात को आयेगी ? लेकिन दिन में ? दिन में भी होगी पर दिखाई नहीं देगी ? अच्छा, कोई बात नहीं ? इतना सुख भी कहां ? इतना स्नेह भी कहां ? आओ, तुमने तो मुझे पुनरुत्थान का नया अर्थ दे दिया है ! आओ, आओ, ईस सुखशैया पर आओ और मेरी नींद को सिंगारो !

(अन्धकार-प्रकाश)

कथक : **कवि का पत्र प्राणुजी, अभी बिमार हो गया**
उसी को देखा के ऐसा कवि का चैन खो गया

कवि : लो, चलो बेटा, यह औषघ ले लो, उठो। बैठो थोडी देर! देखो तो, तुझे दिखता है न सब कुछ बराबर? हो जायेगा, तुझे सब कुछ साफ दिखाई देगा। यह औषध दूध ठीक से लेते रहो। नहीं, नहीं दूध तो लेना ही होगा, वरना तुम ठीक कैसे होगे ? क्या, माँ के पास जाना है ? नहीं,नहीं, बेटा, ऐसा नहीं बोलते। और माँ तो यहां ही है। रोज रात को तुझे देखने आती है। हां, हां, दर्शन भी देंगी तुझे ! लेकिन तेरी यह आँखें अच्छी हो जाये तब तुम अच्छी तरह से देख पाओगे न ? और यह औषध नहीं लोगे तो आँखे ठीक कैसे होगी ? इस लिए यह औषध ले लो ! मैंने शहद भी कुछ ज्यादा ही डाला है। हां, अब मेरा लाल बहादूर बना ! देखना, अब रात को न'दी आयेगी और हमदोनों उससे बातें करेंगे। अरे, अरे, यूँ लूढक क्यों जाता है ? तुझे कुछ होता तो नहीं ? हां...जरा स्वस्थ हो जा। क्या ? सितार बजाउं ? हां, हां, तुम कहो और मैं सितार न बजाउं ? अवश्य बजाउंगा ? बोलो, कौन सा राग सूनना है? भैरवी ? (कुछ देर बाद) ठीक है ! तुझे भैरवी पसंद है, तो मैं भैरवी ही सुना दूं।

(भैरवी के सूर दो-तीन मिनिट तक। प्राणलाल सो गया है मान कर उसके पास आना। श्वास चलता न देख अचानक चीखना !)

नहीं, नहीं, नहीं, न्हानी, बाहर आओ। यह प्राणु को कुछ हो गया। न्हानी, देख, उस का श्वास गया न्हानी, वह अपने बीच से चला गया....नहीं, नहीं, प्राणु, ऐसे नहीं जाना है तुझे। मेरी न'दी का तुम एक अंश। तुम भी चले जाओगे तो मेरे जीवन खण्ड का एक हिस्सा समाप्त हो जायेगा। अरे, खडे हो....ऊठो.... ऊठो ....

नहीं, अब वह नहीं ऊठेगा..... न्हारी, मेरी सेवा, मेरी सितार निष्फल गई। आज से यह सितार छोड़ दी ! यह अब किसी के लिए नहीं बजेगी ! मेरी जीवनसितार शांत हो गई न्हानी ! मेरे दो स्वजन इस तरह...

(रोना, अंधकार-प्रकाश)

होगा, प्राणु का भी पुनरुत्थान होगा। मुझे पिताजी, नंदी और प्राणु उसी ही रूप में वापस मिलेंगे। प्रभु ईसु के उस बचनों में मुझे अपार आस्था है। उसी ही रूप में, बलकि विशेष शुद्ध रूप में वे तीनों मुझे वापस मिलेंगे। हे, परम पिता। आप की पवित्र आत्मा की प्रेरणा और मार्गदर्शन हमें दो प्रभु! आमेन।

प्रथम अंक समाप्त

जलपरदे से

द्वितीय अंक

कवि : नहीं, नहीं, ठाकुर यह पुनरुत्थान की बात पुनर्जन्म की बात से ज्यादा ही ठोस है ! मनुष्य का एक ही अवतार में पुनरुत्थान होता है ! तुम मानो की न मानो, तुम्हारे अज्ञेयवादी तर्क उसे स्वीकार करे की न करे, लेकिन मेरे लिए तो ईसाई धर्म का यह सिद्धांत पूरी श्रद्धा का विषय है । मुझे पिताजी, नर्मदा, और प्राणु तीनों उसी ही रूप में मिलते हैं । हमारी बातें निरंतर चलती है । स्वर्ग में जा कर आये हुए वे तीनों जब स्वर्ग के दिव्य आलोक की बातें कहते हैं तब आश्चर्यचकित रह जाना पडता है ।

भ्रमणा कहते हो तुम ? अरे, ठाकुर, भ्रमणा नहीं, प्रतीति कहो, प्रतीति! साक्षात्कार ! प्रभु की करुणा का कृपाप्रसाद मुझे मिल चुका है ! अभी तो, बलवंतराय, तुमने स्वीऽनबोर्ग नहीं पढ़ा । क्या रसाल बानी । पारदर्शक ! स्फटिक जैसी निर्मल ! ऐसी स्पष्ट बानी मैंने आज तक और किसी की नहीं पढ़ी सूनी! कोई तर्कछल नहीं । जैसे हृदय में से सीधी सीधी निकली हो । ठाकुर, यह सच है कि 'स्वधर्मे निधनं श्रेयं' लेकिन मेरे लिए तो ईसाई धर्म ही श्रेयस्कर होगा ! वही स्वधर्म !

धर्मातर ? ना, ठाकुर, ना । 'धर्मातर' शब्द का पदक्रम उलटा कर दो! 'धर्मातर' में कौन से शब्द है ? 'धर्म' और 'अंतर' यानी कि धर्म पहले और अंतर बाद में है । मेरे लिए अब अंतर पहले और धर्म बाद में है । मेरे लिए तो यह अंतरधर्म है ठाकुर, अंतरधर्म ! नहीं, कोई भी धर्म न तो उच्च है, न तो निम्न ! अपनी अपनी सामाजिकता अनुसार सभी लोग धर्म से जुड़ते है । लोगों की आस्था और प्रतीति का यह विषय है। ठाकुर, तुम ऐसे असहिष्णु कैसे बन गये ? सभी धर्म आदरपात्र है ! कोई भी धर्म उच्च या निम्न हो ही नहीं सकता । ऐसी तुलना ही गलत है । और ठाकुर धर्म जन्म से नहीं, कर्म से है, होना चाहिए । जन्म अन्याधारित है, पराधीन है । कर्म स्वाधीन है । इस लिए कर्म से धर्म, न कि जन्म से धर्म !

गले नहीं उतरता है न ? सदियों से संस्कारो के थर चढ़े है इस लिए! लेकिन पुनरुत्थान इस का भी होगा, ठाकुर, पाताल फोड़ कर यह झरण निकला है, तो बिना बहे रहेगा ही नहीं ।

ठाकुर, यह स्वीडनबोर्ग की छबी देखो. और ठहरो, साथ में यह मेरे पिताजी की छबी देखो। लगती है न दोनों एक जैसी ? स्वीडनबोर्ग की गहरी आंखो में दूर दूर के कितने दृश्य अंकित हुए दिखाई देते है ! करुण और करुणा, आर्द्रता और मृदुता कैसे एक से हो गये है उनकी आंखो में । मैं तो पिताजी को देखूं कि स्वीडनबोर्ग को ? एक में दूसरे को और दूसरे को एक में निहार रहा हूं। मुझे इन दोनों में विगलित होता हुआ पाकर कोई विरल अद्वैत का अनुभव कर रहा हूं। ठाकुर, मेरा अद्वैत अब मानों बदलने लगा है, या कहो कि अद्वैत की परिभाषा आज मेरे सामने अचानक अत्यंत स्पष्ट बनकर उभर रही है।

(अन्धकार-प्रकाश)

कथक : **कवि के पास न्हानी को अंग्रेजी सीखनी ही थी**
ज्ञान भी, प्रेम भी दोनों. चाह भी झैलनी ही थी
प्रातः काले पूजा जैसे, ध्यानमग्न बनी रही
अंग्रेजी संस्कृत सिखी, विदूषी भी बनी सही ।

कवि : लाओ तो जरा, देखूं आज कौन सा प्रकरण पूरा किया ? हां,हां, मुझे पता है । तेरे आगे में शिक्षकगीरी नहीं करुंगा । तुमने ना कहा बाद में मैंने तुम को गृहकार्य देना तो बंद ही कर दिया है न ? लेकिन जब तुम कोई गलती करने लगो तो मुझे सुधारना तो चाहिए न ?

इस शब्द का उच्चार करो तो जरा ! (कवि जोर से हँसे) हँसे नहीं तो और क्या करें ? तुम्हारा उच्चार तो पढ़ो ज़रा गौर से! स्पेलिंग पढ़ो! डी आाई वी आई एन ई। हां, अब उसका उच्चार 'डाईव ईन' नहीं पर 'डीवाईन' होता है ! अब पूरा वाक्य पढ़ो ! अरे यूँ मेरी गोद में गिरने का ? मैंने तो तुम्हें वाक्य पूरा करने को कहा,क्या ? 'डाईव ईन लव'। अब भी वो ही ? और वह भी क्रिया के रूप में ? समझा । तो यह है तुमारा 'डाईव ईन लव' ! अब खड़ी हो जाओ, अभी बच्चें आ जायेंगे। मैंने तुम्हें 'डीवाईन लव' बोलने को कहा है, यूँ 'डाईव ईन लव' करने को नहीं कहा! इस तरह मेरे होठो पर उंगली क्यों लगाती हो ? डीवाईन कीस़ ? प्लीज़ ! अब बैठो बैठो डीवाईन कीस वाली ! पढ़ाई के वक्त केवल पढ़ाई । दूसरी कोई लपछप नहीं समझी ?

कथक : **प्लेटो के फिट्रस का भी, भाषांतर किया तभी,**
नित्य व्यासंग में लीन, निदिध्यासन भी कभी ।
दूसरा दौर युग्म का सुख से बहता रहे,
कवि के चित्त में तो भी सूना सूना लगा रहे ।
स्वीडन्बोर्गी खयालों में बार बार धूमा करे,
भीतरी शून्यता लिये इर्दगिर्द फिरा करे ।
कलापी से द्विवेदी से पत्रालाप किया करे,
मिले ना कोई चारा भी, कभी माथा कवि कूटे !

(लाठी में कलापी के घर का दृश्य)

कैसे हो सूरसिंहजी ? आप तो कब से लिखते थे, लेकिन मैं आ नहीं पाया ! इस बार आ पाया । हां, सच्ची बात। मेरे दोनों स्वजन चल बसे । बाद में घर सूना सूना सा लगता है। दूसरी नर्मदा है लेकिन न'दी के जाने के बाद तो खालीपन ही लगता है । नहीं आना था यहां मुझे, क्योंकि आपकी आपत्तियां भी कहां कम है? लेकिन आपने लिखा था कि बाईबल का अनुवाद करना है तो मुझे लगा कि हो ही आउं । अभी तो स्वीडनबोर्ग पढ़ रहा हूं । इस आदमी के विचार अद्‌भूत है । आपको भी मैंने लिखा ही है उनके विचारों के बारें में । यद्यपि आपने तो उनके और मेरे विचारों के बारें में असंमति जताई है, लेकिन यह तो आपका अधिकार है । मेरी आस्था और आपके विचार में भिन्नता है । लेकिन एक बात करुं सुरसिंहजी? स्वीडनबोर्ग के 'डिवाईन लव एण्ड विज़डंम' ग्रन्थ से कालरिज भी प्रभावित हुए थे । लिंकन उनके अभ्यासी थे । स्ट्रिन्डबर्ग, राल्फ ट्राईन, रानी विक्टोरिया स्वयं उनमें आस्था रखते थे । एमर्सन, पुस्किन, हेलन केलर, ब्राउनिंग जैसे कई बड़े बड़े लेखक और चिंतक के वे आदर्श थे ! लेकिन जाने दो ये बातें । आपने अभी कुछ लिखा कि नहीं ? लाओ, लाओ, पढ़ें ! वाह ! तुलसीदास पर खंडकाव्य लिखा है ? सुंदर ! (पढ कर) एक परिवर्तन का सूचन करुं ? काव्य तो सुंदर ही है, लेकिन अधिक सुंदर बने ऐसा कुछ सूचन करुं? हां, हां, मैं जानता हूं । इसी लिए ही आपने मुझे दिखाया भी है।

G-5781

लेकिन कवि को एतराज हो तो परिवर्तन कैसे करें ? कोई हर्ज नहीं ? तो देखो, आपकी यह पंक्ति है न :

''म़ारा व्हाला, हृदय तुलसीदास तुं रामनो था' उसके स्थान पर 'सूर हृदयथी' और 'ईशनो' शब्द रख के पंक्ति को इस तरह बनाओ:

'मारा व्हाला सुर हृदयथी दास तुं ईशनो था' । अब आइ बात समझ में ? शीर्षक भी बदलना पड़ेगा ! हां, 'बिल्वमंगल' या 'सुरदास' रखो ! यह परिवर्तन का प्रयोजन समझ में आया ? हां... ऐसा ही । सुर याने सुरदास और सुर-सिंह भी ! वाह, कवि, समझ गये ! यह मोहमाया में से, इस जंजाल में से बाहर निकलो और अध्यात्मसाधना में लग जाओ । हां दास तुम ईश के हो!

आपने तो गीता का भी अनुवाद शुरु किया है न ? सुरसिंह जी, मुझे तो यह कृष्ण, बुद्ध, ईसु, हसन सब एक जैसी करुणा की प्रतिमा लगते हैं। स्वीडनबोर्ग ने बाईबल संदर्भ में जो कहा है वह मेरे लिए अब जीवनमंत्र बन चुका है सुनिए :

'God is love'

स्नेह स्नेह को निहारता है। स्नेह स्नेह को खिंचता है। स्नेह स्नेह से बंधता है। सकल भावना, सकल विश्व में व्याप्त एक ही विभूति वह स्नेह है

सुरसिंह जी, मुझे तो इस शब्दों के साथ 'आमेन' ही रखना पड़े। आपने देखा सुर ! यह 'आमेन' और अपना 'ओम' एक से नहीं ? दोनों में मुझे एक सी परम शांति का अनुभव होता है।

सुरसिंह जी, देखो, आप इस स्वीडनबोर्ग की छबी देखो ! मैंने ठाकुर को भी दिखाई थी ! मैंने उन्हें कहा कि यह छबी मेरे पिताजी की छबी से मिलती झुलती है, पर उन के गले यह बात नहीं उतरी । लेकिन आप तो देखों । देखो, दोनों कितने समान दिखते है। ओ, परम पिता, यह छबी देखते ही मेरे अंतर में कुछ विरल खिंचान महसूस होती है। कोई दिव्य अंश मुझ में प्रवेश सा करता है । सुरसिंहजी, कभी चर्च में गये हो? मैं वडोदरा के चर्चमें एक बार गया था । बाद में मुंबई में भी बार बार जाता था और तब मुझे अवर्णनीय, अकल्प्य आनंदसमाधि का अनुभव होता था । में मुझमें ही तन्मय होने लगता । स्वीडनबोर्ग को पढते वक्त भी मुझे ऐसा ही होने लगता। उनके

स्वर्गवर्णन के दृश्य मेरी आंखो के सामने खुलने लगते। आप के सान्निध्य में यह सभी बातें होने से मुझे सुख सुख हो गया। दिल जैसे बाग बाग हो गया।

हां, हां, भोजन लेंगे। बातों बातों में यह तो भूल ही गये। बापु, मैं तुरंत निकल जाउंगा, बाद में। आप रहे व्यस्त ! राजकाज में से मुक्त हो तो कभी भावनगर पधारिए।

मैं भी आपको मेरी कई रचनाएं दिखाना चाहता हूं। आप के कश्मीर प्रवास की बातें भी तो सुननी है। लेकिन वह तो भोजन लेते लेते सूनेंगे। हां, हां, चलो प्रसाद ग्रहण करें।

(अन्धकार-प्रकाश)

(कान्त के घर का दृश्य। दरवाजा खिटखिटाने की आवाज)

कौन ? (दरवाजा खोलने के लिए जाय ! अनजानी व्यक्तिओं को देखके)

आप को किसका काम है ? हां, हां, मैं ही मणिशंकर ! आइए ! आप ? ओधवजी तरवाडी। हं, हं... और ये जो आप के साथ है वे ? यह मनसुखभाई और यह ? हं, दयाशंकर जोशी। अच्छा, अच्छा पधारिए !बैठिए। कहो, क्यों आना हुआ ? ओहो, आप नाटकमंडली चलाते हो ? कौन सी ? आर्योदय नाटक मंडली ? हं, और मेरा नाटक खेलना चाहते हो ? 'जालिम टुलिया ?' हां, हां खेलो ! खेल ने के लिए तो लिखा है। आप तो जानते होंगे कि पहले मैंने इसका शीर्षक 'रोमन आत्मशासन' रखा था। अंग्रेज प्रजा ने हमें दो बड़ी रियासत दी है' : एक लोकशासन और दूसरी व्यक्तिस्वातंत्र्य। यह लोकशासन की और व्यक्ति स्वातंत्र्य की बात गुजराती नाटक में रखनेवाला मैं पहला ही हूं ! लेकिन जाने दो यह बात ! पहले हम चायपानी ले। न्हानी, जैरा चाय बनाना तो।

कहो, पहले आप लोगों ने कौन कौन से नाटक खेले ? मणिलाल द्विवेदी का 'कान्ता' खेला ? आपकी रुचि तो अच्छी लगती है। 'ललिता' खेला की नहीं ? हां, यह भी सच। कोई और कम्पनी खेलती हो तो हम नहीं खेल सकते। लेकिन 'ललिता' अच्छा चला नहीं ? रमणभाई नीलकण्ठ उस की बहुत तारीफ करते थे। आप कभी मिले हैं उनसे ? नाम ही सूना है ? मिलने जैसे हैं। उनको भी नाटक में अच्छीखासी रुचि है। उनके 'भद्रंभद्र' का नाटयरूपान्तरण करने जैसा है।

(नर्मदा का चाय के साथ प्रवेश)

लो चाय पीओ। इतनी सारी नहीं ऐसा ? अरे पीओ भी महाशय। हमारे काठियावाड में तो चाय तसला भरके गटागट जाय !

न्हानी ! ये लोग मेरा नाटक खेलना चाहते हैं। खेलने देगें? हां, हां, तुम तो हा ही कहोगी ? और मैं भी क्यों ना कहूं ? खेलो, अवश्य खेलो ? लेकिन पहले खेल में मुझे अवश्य बुलाना। मुश्किल? किस बात की ? आप तीनों एक दूसरे की ओर क्यों देख रहो हो? क्या बात है ? देखो, पुरस्कार की चिंता मत करना। पहले पांच खेल तक मैं आप से कुछ नहीं लूंगा ! बाद में तो नाटक चला तो ठीक है, नहीं तो उसके नाम का नाह लेने का ! यह तो चला तो तीर और बहा तो पानी ! इसलिए यह 'मुश्किल' जैसा शब्द तो छोड़ ही दो!

क्या ? नाटक के कुछ अंश निकाल देने हैं ? कौन से ? दूसरे अंक के ? और कुछ शब्द कठिन लगते हैं ? हं, तो कुछ सरल करने है? इस प्रत में ? (प्रत को सामनेवाले के हाथ से अपने हाथ में लेकर) सुधार किया है ? आपने ? आप सब ने मिलकर ? और अब मैं उसी तरह बदल दूं ?

(कान्त इधरउधर चक्कर लगाएं। धीरे से द्वार बंध करे। द्वार के पास पड़ा डंडा लेकर के तीनों को मारने लगे।)

रांड के। घेलहागरी के। तुम लोग मेरे नाटक में सुधार करना चाहते हो ? तुम लोग? मेरे नाटक में ? तुम खेलनेवाले बदल देना चाहते हो ?(मारना चालु। न्हानी अंदर से आये) न्हानी, तुम दूर रहो। ये सब इसी के लायक है ! साले, धंधेवाले, आये बड़े। हड्डियां तोड़ डालूंगा सब की! (मारना चालु) मत खोल। न्हानी। दरवाजा मत खोल। कहता हूं मत खोल...

कहां भाग गये बेवकूफों ? अब आये तो खैर नहीं। नाटक करने का ही भूलवा दूंगा !

(तीनों भाग जाये)

हां, पर न्हानी, क्रोध आ जाये ऐसा ही था। वे तीनों क्या लेखक है ? और मैंने क्यों, किस लिए ये शब्द लिखे है उसका पता इन लोगों को कैसे चल सकेगा? लिखना माने आंते गले में लाकर लिखना। एक एक शब्द पर कितना वज़न होता है, विचार होता है। इन बुधियों को, बेवकुफों को इस का पता कैसे चले? निकल पड़े है नाटक खेलने!

पैसे कमाने है इनको तो ! वे क्या जाने नाटक क्या होता है ? कैसे लिखा जा रहा है ? बोले बदलना पडेगा । सभी को मार मार कर ठिकाने लगा देने चाहिए !

(न्हानी पानी का ग्लास देती है, थोडे शांत हो कर)

न्हानी ! तेरी बात बिलकुल सही है । वे जानते नहीं है कि वे क्या कर रहे है । उनको पता ही नहीं यह नाटक नामक चीज का । नादान है । प्रभु ईसु...

हां, न्हानी ! फिर ईसु । मुझे तो वे बारबार याद आते है । प्रभु ईसु ने तो क्रोध करनेवाले पर भी प्रेम बरसाने का कहा है । और यहां तो मैं ही क्रोध कर रहा हूं । धिक्कार है मुझे ! फट है मुझे । (अपनी ही छाती, गाल, माथे पे थप्पड लगाये ।) बाईबल में तो कहा है कि जो तुझे एक गाल पर थप्पड मारे उस के सामने दूसरा गाल भी धर दे । जब कि यहां तो मैंने ही उन सब को मारा ! न्हानी, मुझ से अपराध हो गया । मेरा खुद का । मेरा खुद का और मेरे खुदा का भी । प्रभु, मुझे क्षमा करना क्योंकि क्षमा में ही शांति है, क्षमा में ही वीरता है, क्षमा में ही दैवी कृपा है। मुझे माफ करना मेरे प्रभु, माफ करना । आमेन ।

(दृश्यसमाप्ति : अंधकार-प्रकाश)

कथक : आपको लग रहा होगा कि कहां चला गया था मैं ? लेकिन मैं तो यहां ही था । यूं भी मैं कहीं जा सकूं ऐसा है ही नहीं । इन पृष्ठों में मैं ऐसा बंधा-धिरा हूं कि इस से मुक्त हो ही नहीं सकता । हां, तो यंहां था इस का मतलब कि कहां था ? बताउं । वह सामने वाली कुर्सी पर ही मैं बैठा था और पूरे साक्षीभाव से कविजीवन का उतार-चढाव देख रहा था । सबकुछ ठीक चल रहा था लेकिन मुझे लगा कि दर्शकसमुदाय मुझे बिलकुल ही भूल जाय इस से पहले याद करा दूं कि मैं अभी तक हूं । नाटक में, भूमिका मैं लीन हूं ! अभी तो मुझे बहुत संकलना करनी है । मैं ऐसे नहीं चला जाउंगा । और मुझे कोई निकाल भी नहीं पायेगा । मैं खडा हूं मेरे सत्त्व पर । मैं खड़ा हूं मेरे वित्त पर । तो

पुनः करता हूं शुरु छंदराज अनुष्टुप
गुर्जरी वक्ष मैं जैसे तेजस्वी यव कौस्तुभ
कविजीवन मैं हूआ उत्पात जिस चीज़ से
सूनाउं जो कहानी मैं सूनो जी दिल थाम के
कवि घोघा गये, देखा चर्च था भव्य को वहां
कवि के भाग्य का लिखा भवितव्य नया जहां ।
प्रतीति और श्रद्धा से बाप्तिस्मा अपना लिया
दोनों बालक वहां थे पत्नी थी नहीं साथ में ।

कवि : (जल में गोता लगा कर) है परम पिता ! मैं इस पवित्र जल में गोता लगाकर, मेरी इन संतानो के साथ, आप का तेरा यह विनम्र बालक भी विशुद्ध हो रहा है तब मेरे पुत्रत्व का स्वीकार करो । हे परम पिता, हम आपकी आभार स्तुति कर रहे हैं कि आज का यह सुंदर प्रसंग आपने मुझे दिया है ।

आपके प्रिय पुत्र के बाप्तिस्ता के वक्त आंपने जो खुशी व्यक्त की थी कि यह मेरा प्रिय पुत्र है और मैं उस पर प्रसन्न हूं । ऐसी ही खुशी आज आप महसूस करो ऐसी हमारी प्रार्थना है ।

बच्चों । चलो फादर को प्रणाम करेंगे ! सामने रहे ईसु के चरणों में मस्तक झुका देंगे और बाद में चर्च का पवित्र भोजन लेंगे । चलो ।

(फादर, ईसु को वंदन । पवित्र भोजन लेना । भोजन समाप्ति के बाद बच्चों से ।

चलो, बच्चों । घर चलो । आज से अपना धर्म बदल चुका! बदला मानें स्पष्ट हुआ । आज हमने धर्म की समझ प्राप्त की ! चलो, घर चलें । (घर का दृश्य)

कवि : आदरणीय बडे भैया हरजीवनभाई,

आप मेरा इसाई धर्म की ओर रहा लगाव जानते थे ! आप को बताने की रजामंदी लेता हूं कि मैंने घोघा के चर्च में पवित्र भोजन के साथ बाप्तिस्मा लिया है ।

मैं जानता था, और जानता हूं कि जाति के लोगों का बहिष्कार सहन करना पड़ेगा । मुझे इसकी ज्यादा परवा नहीं है यह तो आप जानते हो । हां, अपनों की रुख का अंदाज़ा नहीं है । लेकिन मैं लाचार था, इस लिए मैंने यह निर्णय लिया है ।

आपका छोटा भाई,
मणिशंकर

जलपरदे से

विशेष नोंध :

जीसस क्राईस्ट के अलावा स्वर्ग का कोई और ईश्वर नहीं है। अपने देश के लोग क्राईस्ट का नाम तो जानते है लेकिन उसके धर्म के बारे में कुछ भी नहीं जानते हैं और सिर्फ तिरस्कार ही करते हैं। उसके धर्म के बारे में तो कई ईसाई भी ज्यादा नहीं जानते । इस धर्म के कई रहस्य मैं जान चूका हूं । मैं देख रहा हूं कि सभी मनुष्य एक ही ईश्वर की संतानें है । इस देश की अधोगति का प्रमुख कारण यहां की वर्णव्यवस्था है । मैं जाति के बंधन तोड़ रहा हूं । मुझे सहन करना पड़ेगा लेकिन वह मेरे लिए नहीं, देश के लिए । मैं ईश्वरी संदेश देना चाहता हूं । देश के लोग सूनेंगे तो उनका कल्याण होगा ।

कथक : और उनकी धारणा अनुसार ही प्रथम बहिष्कार किया जाति के लोगों ने । बाद में किया परिवारजनों ने । माँ, बहन, भाई । अरे वह हरदम साथ रहनेवाले मित्र बलवंतराय ठाकुरने भी....

(सभी दिशाएओं मैं से 'बहिष्कार' की आवाज़े । कवि सभी के बीच मैं धिरे हुए ।)

कवि : वाह, वाह, कवि ! ठाकुर ! तुम तो खुद को अति बौद्धिक मानते थे न ? तर्क तो चांदतारे तोड़ लाने के किया करते थे ! अज्ञेयवादी मानते थे खुद को ! कहां गई वे सारी तुम्हारी बातें ? प्रभुईच्छा ! और क्या ? उनको माफ करना प्रभु, क्योंकि वे कुछ जानते ही नहीं ! प्रभु को पसंद आया वही सही । God is just, whatever he does is for the best...

(कवि अब घर में है ।)

क्यों कोई दिखाई नहीं देता ? न्हानी ? कहां हो तुम सब ? अरे अंदरुनी कमरे से बाहर तो आओ ! न्हानी ? मैं तो धबरा गया था ! कहां थी तुम ? इतनी दूर क्यों खड़ी हो ? हें ? क्या ? क्या कहा ? आज से हम दोनों एक घर में साथ में नहीं रह सकेंगे ? अच्छा ? क्यों ? ओह ! समझा ! दुनिया के साथ तुम भी जुड़ गई । प्रभु ! प्रभु ! यही कसौटी न ? सच्ची कसौटी घर में ही होती है ! ठीक है....और बच्चे ? वे कहां है ? क्या ? क्या कह रही हो ? वे भी मुझे नहीं मिल सकेंगे ? न्हानी, न्हानी, ऐसा कठोर जुल्म मत करो ! क्या कह

रही हो तुम ? तुम्हारा और मेरा कमरा भी अलग ? अच्छा, यह कमरा इसी लिए पहले से ही आधा कर दिया गया है ? समझा । और मेरा शाम का भोजन ? आज के दिन का तैयार रखा है ? अरे, वह भी क्यों बनाया ? तुम तो जानती हो कि मणिशंकर स्वयंपाकी है, खुद खाना बना सकता है । न्हानी, अब कल से मेरा भोजन मत भेजना । मैं खुद बना लूंगा । माँ-बहन भी यही चाहती है न ? न्हानी, आज तो यह थाली ले जाओ ! आज मैं भोजन नहीं लूंगा । अब तो तुम उस थाली को छुओगी भी नहीं । ठीक है । गाय-कुत्ते को डाल देंगे। लो, मैं ही बाहर रख दूं ।

(थाली बाहर ले जाना)

(कलापी के घर का दृश्य)

कवि, आप के घर ही रहा जा सके ऐसा है । देखो, यह पट्टणी का खत! पट्टणी ! मेरा बालदोस्त ! मेरी जातिवाला । उसकी सिफारिश से मैं भावनगर गया । नौकरी में जीजान से महेनत की । दोस्त था इस लिए काम भी ज्यादा करना पड़ा । बिलकुल छूट नहीं ली मैंने ता कि उसका बुरा न दिखे । और उसने तो एक ही वाक्य में लिख ड़ाला वह देखो । सुरसिंहजी, कारोबार के खेल देखो। लिखते हैं :

"धर्म या नौकरी, दो में से एक छोड़ना होगा !" यह मित्र ! सुरसिंहजी। देखो, ठाकुर तो वैसे ही पलट गये और यह भी ! न जाने मैंने कौन सा बड़ा अपराध न कर डाला हो ! जैसे ही पट्टणी का ख़त मिला कि मैंने छोड़ी नौकरी. लिख दिया झट से इस्तीफा । वैसे भी मुझे चुभती थी । दोस्त की वजह से छोड़ नहीं पाता था । अब तो परिवार भी नहीं रहा । किसके लिए करने की नौकरी ? अब तो चाकरी सिर्फ प्यारे प्रभु की । नर्मदा भी नैहर चली गई है। बच्चों ने मेरे साथ बाप्तिस्मा लिया था लेकिन जातिवालों ने उन्हें नादान गिन कर विशुद्ध कर के जाति में वापस ले लिया । मैं जाऊं तो कहां जाऊं ? हुआ कि सुरसिंहजी के पास जाउं, इसलिए यहां चला आया । आप को भी लोकापवाद का ड़र हो तो चला जाउंगा । कहो, एक पल भी नहीं ठहरूँगा । नहीं, नहीं न ? जाना नहीं है तुम्हें कहीं भी ऐसा न ? सुर, मुझे पता था । आप तो बाईबल और स्वीडनबोर्ग पढ़ चुके हैं । दोस्त पर भरोसा रख कर ही यहां

आया था। मुझे पता है कि आप भी बहुत आपत्तियां भुगत रहे हो। बहुत नहीं रुकूंगा यहां। थोड़ा रह कर निकल पडूंगा कोई अगोचर दिशा में अकेला।

(अंधकार-प्रकाश)

कथक : **उद्विग्नता के साथ वे यहां वहां घूमा करे,**
स्नेह की राजधानी की खोज में नित्य व्यस्त है।

कवि : (प्रार्थना)
ऊँचां पाणी मने आ सतावे पिता !
प्रभु ! तारक। सत्वर उद्धारी ल्यो !
कैंक नारकी द्दश्य बतावे पिता !
मने पातकीने दयाथी तारी ल्यो।
मारी होडी खराबा मां तूटी गई,
मारी जोडी...
मारी जोडी... (ओह, ओह, प्रभु)
जोडी.. माया ते लूटी गई।
मारां पाप तणो अरे पार नथी,
प्रभु, तारक। सत्वर उद्धारी ल्यो !

(नर्मदा और प्राणलाल को साक्षात् देख रहे हो ऐसा द्दश्य)

अरे, मेरे प्रभु ! ये आपने किस को भेज दिये ? मेरे दोनों प्रिय पात्र ! प्रभु आपका उपकार जितना मान सकूँ कम ही है। न'दी आओ, कहां चली गई थी मुझे अकेला छोड कर ? यूं रंग में भंग कर के चले जाने का ? देख, मैं तेरे बिना कैसा गूमसूम सा हो गया हूं ? और बेटा, प्राणु, तुम भी आओ, यों दूर मत खड़े रहो। आओ, मेरी गोद में बेठो, आओ !

(प्राणलाल जैसे गोद में बैठा हो)

वहां, तुझे कैसा लगता है ? न'दी तुम्हें ? यदि वहां अच्छा हो तो मैं भी आ जाऊं। और शायद अच्छा न भी लगे तो वापस तो आ ही सकते हैं ! इस सूनेपन से तो बचा जा सके ! सभी है, घर में ! जूही के फूल ? न'दी क्यों मजाक कर रही हो ? वे तो तेरे साथ चले गये। सितार ! सितार प्राणु लेता गया उसके साथ ! मेरा फूल गया, मेरा गीत गया, 'गयुं सुख गयुं बधुं, न पण जीववानुं गयुं....' हाय...

(अंधकार-प्रकाश)

खत : एतान श्री भावनगर मध्ये मणिशंकर रत्नजी भट्ट को मिले :

कल महाराजाधिराज लाठी नरेश सुरसिंहजी तख्तसिंहजी गोहिल गोलोकवासी हो गये हैं ! 'ईश्वरेच्छा बलियसि' ।

कवि : आमेन ! हाय रे ! अरे रे ! सुर ? आप भी चल बसे ? 'रे, सुरता की बाडी के मीठे मोर ! इस उम्र में ? अभी तो छब्बीस ही हुए थे । और आप यूँ ? काल! तेरी गति अकल है । है परम पिता ! उनके लिए स्वर्ग के द्वारा खुले रखना । जिससे उन्हें ज्यादा प्रतीक्षा न करनी पड़े । आमेन ।

कथक : **है सद्मे घोर, पीडाएं, कसौटी ही कसौटियां**
शूली पर चढ़े बांहें दो फैलाकर ऊर्ध्व में ।

(कवि के घर का दृश्य । द्रवाजा खटखटाने की आवाज़)

कवि : कौन ? अहो ! न्हानालाल ? आप यहां कैसे ? आप की तो अपेक्षा ही कैसे रखें ? अरे वाह, भाभी जी भी आई है न ? आओ, पधारिए, माणेकभाभी, ठीक याद आया यह अकिंचन जीव !

बच्चें क्यों नहीं दिखाई देते ऐसा न ? भाभी जी, न्हानालाल जानते है सबकुछ । यहां ही है । वहां सामने वाले कमरे में अलग रहते है । ठहरो ! बुलाउं । आयेंगे । वहां दरवाजे पर खड़े बात करेंगे ।

न्हानी ! ओ न्हानी ! देखो तो कौन आया है ? लो, आ गई ! जाइ ये, उन से मीलिए भाभी जी । मैं और कवि यहां बातें करेंगे ।

कवि कहिए । कैसे हो ? तप बढ़ता है न ? आप का अनुवाद मुझे बहुत अच्छा लगा... उंडां अंधारेथी प्रभु परम तेजे तु लई जा... असत्यो मांहेथी प्रभु परम सत्ये तु लई जा' शिखरिणी के गंभीर गहन लय में आपने यह प्रार्थना सुंदर तरीके से बुनी है । लेकिन ठहरो, मैं पहले जलपान कराउं ।

मेरे हाथ से पीओगे ? वाह, हां कहा आपने ? तो लो, बाकी कवि मुझसे तो परिवारजन ही रुठे हैं । मुझ से ही छूआछूती । दोस्तो में एक सुर थे, पर वे तो चल बसे । आपने बडप्पन दिखाया तो मेरा मन प्रसन्न हुआ ! लो, कवि, जलपान करो ।

देखो, आज में अपनें हाथों से पका कर आप को खिलाउंगा। सोजी का शिरा और भरे हुए पूरे मिर्ची के पकोडे । आपको पसंद है वह मैं जानता

हूं। भाभी जी खायेगी मेरे हाथों का बनाया हुआ ? वह खा लेगी न्हानी के साथ सामनेवाली रसोई में। हम उडायेंगे शीरा-पुरी और पकोडे !

(पकाते-पकाते)

कवि, ठाकुरने यह अच्छा नहीं किया। मैं उनको उमदा मित्र जानता था। मैंने तो तय कर रखा है कि मेरा काव्यसंग्रह मैं उन्हें ही अर्पण करुंगा। 'गमे तो स्वीकारे, गत समय केरा स्मरणमां।' पट्टणी छोड दे उसका मुझे कतई गम नहीं। राजनीति का संबंध स्वार्थ तक। न होता इसका कोई रंज, न होता इसका कोई गम, लेकिन ठाकुर जैसे ठाकुर ऐसे विमुख हो जाये यह बात समझ में नहीं आती। धर्मांतर मानों कोई पापाचरन न हो ? ठीक है, आपत्ति में ही मित्रो की कसौटी होती है, सच्ची बात है न ? यह आप कैसे आ गये मेरे पास ? मन जैसे गुलिस्तां हो गया। लो, यह गरम गरम पकोड़े खाओ... बाद में दूसरे निकालूं।

(अंधकार-प्रकाश)

आवजो, कवि थोडी देर रुके होते तो और अच्छा लगता ! भाभीजी, आवजो ! पुनः पधारजो ! ठहरो, थोडी देर ! दो मिनिट !

''महेमानो ओ व्हालां, पुनः पधारजो,
तम चरणे अम सदन सदैव सुहाय जो,
करजो माफ हजारो पामर पाप जो,
दिन चर्यामां प्रभु पासे पण थाय जो !
महेमानो ओ व्हालां पुनः पधारजो।
उन्नत गिरिशृंगोनां वसनारां तमे !
उतर्यां रंक घरे शां पुण्य प्रमाव जो।
शुश्रूषा सारी ना अमने आवडी !
लेश न लीधो ललित उरोनो ल्हाव जो !
महेमानो ! ओ व्हालां ! पुनः पधारजो

(दृश्य परिवर्तन)

कवि : (स्वगत) हाय ! स्नेह ही मुझे विवश करता है ! कहां है करुणा ? मैं तो ईसाई धर्म का स्वीकार कर के इस देश में बनी दीवारों को तोड़ना चाहता था लेकिन यहां मेरे घर में ही, दीवारें खड़ी हो गई।

इसका मतलब तो य ही न कि स्वजन, स्नेह सब निकम्मे ही है ? धर्म बदला यानी सब मायावी महल की तरह टूट-फूट जाए ? यह शरीर उपवीत पहने, त्रिपुंड लगाए तो स्पर्श्य और वह न हो तो अस्पर्श्य ? इस में प्रेम,वात्सल्य, सरव्य वह सब कहां ? मैं तो मानता ही आया हूं कि 'संपूर्ण संवादिता विभुमय हुए बिना संभव नहीं है। प्रभुने भी कहा है कि वियोग का दुःख होता है वह संयोग का शुभ संकेत है और विशुद्ध होने के बाद पुनः जीवन प्रकट होने लगेगा। देखें, प्रभु में आस्था है इस लिए तो रहते हैं, टीकते हैं। प्रभु यानी जगत। प्रभु यानी जीवन। वह तो आस्था से सभर है। 'धेअर विल बी ए डॉन'। सुबह होगी। हर जगह उजाला ही उजाला फैलेगा।

खत : खत है ? भावसिंहजी का ? ओहो ! मुझे याद किया आखिर ? निमंत्रन है। लिखते है : घर पर आ जाओ, तो अच्छा ? काम पड़ा है। जाये कि न जाये ? अब कहां है हमारी स्टेट की चाकरी कि जाये ? न जाये ? लेकिन नहीं, नहीं, वे भी पुराने स्नेही तो है ही। भावुबापु, आ रहा हूं। कब आना है ? इसी शरदपूर्णिमा के अगले दिन ? हं? महाराज मेरे साथ पूर्णिमा उत्सव मनाना चाहते होंगे। ठीक है। (देनेवाले को) महाराज को बोलना कि हम आयेंगे।

(भावसिंहजी के महल का दृश्य)

प्रणाम महाराज ! इतने दिनों बाद इस गरीब को याद किया ? संगीत सुनना है ? नहीं महाराज... आप शायद नहीं जानते हो कि मैंने प्राणु के देहांत के बाद सितार छोड़ दी है। कुछ जमता ही नहीं। मुझे क्षमा करना। आप प्रेम से कह रहे है। लेकिन मेरे लिए तो यह प्रतिज्ञा हो चुकी है। महाराज, कोई ओर प्रस्ताव रखो। इस जीव को आपने बुलाया, याद किया, आप की बड़ी कृपा हुई। क्यों महाराज ? यूँ खड़े क्यों रहे है आप ?

कोई है अंदर ? कौन है ? अहो, हो हो ! कवि न्हानल ? वाह! 'उग्यो प्रफुल्ल अमीवर्षण चन्द्रराज ?' धन्य, धन्यभाग्य मेरे कि मुझे और कवि को आपने यहां मिलाया। आनंद, आनंद। आप यहां होगें यह तो कल्पना ही कैसे हो ? वाह, वाह ! ज्ञानगोष्ठि होगी, काव्य वार्ता विनोद होगा और मज़ा ही मज़ा।

अरे महाराज, आप यूँ चक्कर क्यों लगा रहे हो। कभी अंदर, कभी बाहर ? बैठिए न? आप खड़े रहते हो तो हम भी बैठ नहीं सकते।

क्या ? और एक महेमान है ऐसा ? वह भला कौन ? महाराज, आपने तो भले रहस्य रखे ? अभी सो रहे हैं ? अरे दस बजने को आये और अभी तक उठे ही नहीं ? कहीं बलवंतराय तो नहीं ? वह है अघोरी। वह भरुची दस दस बजे तक सोते रहते हैं ! हां कवि, महाराज, उसके स्मरण तो अभी तक सता रहे हैं।

लो, यह पधार रहे है ! वह अतिथि भी। (कान्त आश्चर्य में) हो ही नहीं सकता ? ठाकुर ? यहां ? मैं ने तो सिर्फ तर्क ही किया था और यह तो सच में बदल गया ? महाराज, आपने क्या ठान लिया है। कोई कारस्तान तो नहीं है न ?

ऐसा ही है ? तो सुनाओ, सुनुं। तीन तीन दोस्त बोलनेवाले हो तो मैं न सुनुं ? कहो, कहो, मैं उश्चश्रवा बनके सूनुंगा।

आपने सही सुना है। न्हानी मुझ से अलग रहती है। बच्चें भी। हां, दोनों का खाना अलग से पकता है। जाति ने भी बहिष्कार किया है। वह तो मैं पहले से जानता भी था। कभी कभी मैं माणेकवाडी या नीलकंठ महादेव के पास से दरसन के लिए गुजरता हूं तो मेरे जातिजन अपने घरों के दरवाजें बंद कर देते हैं।

हां, महादेव को वंदन करुं और चर्च में भी जाउं। हां, चर्चमें मुझे शांति ज्यादा मिलती है। महाराज, कभी घोघा के चर्च में गये हो ? अहा ! मन-शरीर, देह-देही एक से बन जाते है वहां। खैर, जाने दो, कहो, मुझे क्यों बुलाया है ?

वापस लौट आउं ? समझा ? महाराज, आप तीनों मिलकर यह बात करनेवाले हो तो इसका मूल्य न समझ सकूँ ऐसा तो मैं नहीं। हा, न्हानी भी मेरे साथ साथ कई आपत्तियां झेलती है। लेकिन यह न्हानी मेरे सभी खत खोल कर पढ़ लेती है। कोई पादरी या ईसाई दोस्तों के खत तो नहीं होंगे ऐसा मानकर। बच्चों को तो मेरे पास आने ही नहीं देती। मुझे भी बहुत पीड़ा होती है, महाराज ! पूछो इस न्हानालाल से। वे जानते है सब....

आपने इसी लिए बुलाया है न ? न्हानी को भी इस का बहुत दु:ख है यह बताने के लिए ? वह तो होगा ही महाराज ! बच्चों की भी चिंता होगी। जाति बहिष्कार का उसे भी डर होगा। लेकिन यह तो होना ही था। आप बताओ, महाराज, आदमी का धर्म और वर्ण उसका जन्म निश्चित करेगा ? मेरा विरोध इस के सामने है। वह समझदार हो जाए बाद में अपनी मरजी अनुसार धर्म का पालन न कर सके ? उसके व्यक्तिस्वातंत्र्य का कोई मूल्य नहीं? कुछ कहना चाहते हो, कवि ?

हे...तुम कहतो हो इस तरह व्यक्तिस्वातंत्र्य का मूल्य है। लेकिन मनुष्य का सामाजिक, सांसारिक उत्तरदायित्व भी है। उनका निभाव उसे, उसने वह स्वीकार किया है इसलिए, करना भी पड़ता है। मैं भी वह निभाता हूं। मैंने न्हानी को ईसाई होने को नहीं कहा। हां, बच्चों को मैं अपने साथ ले गया था, लेकिन न्हानी ने उन्हें परिशुद्ध बना कर जाति में वापस ले लिए। लेकिन इन परिवारजनों ने न देखी मेरी संवेदना, न देखी मेरी निष्ठा, न देखी मेरी [illegible]। उन्होंने तो मेरे ईसाई होने से मेरा तिरस्कार ही कर दिया। मुझ से यह सहा नहीं जाता महाराज। इतना क्या कम था कि ठाकुर ने भी विमुखता कर ली ! पट्टणीने तो चिठ्ठी पकड़ा दी। यह सब स्नेहीजनोंने भी मेरा मर्मांतर नहीं देखा, सिर्फ मेरा धर्मातर ही देखा। मुझे क्या कम पीड़ा होती होगी महाराज ? अब तो लगता है कि कवितासुंदरी भी मुझ से रुठ गई है। अच्छी रचनाएं अब होती ही नहीं !

इसीलिए बुलाया है यह बात मैं समझ गया हूं। कहो, यह विमुखता, यह स्वजनद्रोह मुझे कैसे रास आयेगा ? मैं तो पहेले से मैत्री का, मनुष्य का चाहनेवाला, मुझे यह सब कैसे पसंद आयेगा ? लेकिन ये सब दोस्त ऐसे छोटे मनवालें ? इन से तो वे कलापी भले। अंतिम क्षणों तक मुझ से मिलते रहे, खत लिखते रहे ! यह कवि, मेरे घर पधारे। लेकिन यह ठाकुर ?....वह पट्टणी ? महाराज, स्वयं आप भी... जाने दो वह सब....

भुलाया नहीं है इस लिये बुलाया है ? इतना आपका उपकार महाराज! मुझे भी थोडा सुकुन मिलता है। अतीत के उन दिनों की याद आ रही है आज।

याद है महाराज, इस गंगाजलिया तालाब में पहली बारिश का पानी भर जाता था तो हम घंटो तक उसमें तैरने रहते थे। मैं भी घंटो तक उसकी सतह पर पडा रहता था शव की तरह! कभी कभी घुड़सवारी करते करते दूर तक निकल जाते थै हमदोनों। संगीत के तान पर, ताल पर रात रात भर जग लेते थे ! यह सब आप को तो याद ही होगा न ? आज तो वे बातें भी सुननी है। आप का गुस्सा भी झेलना है। आप के ताने भी मोती जैसै लगेंगे आज!

"स्नेही स्नेह तणो अनादर कहो,
शी रीतथी हुं सहुं ?"

हां महाराज,

"तमारी पासे तो कुसुम सरखो कान्त गणजो'

वचन ? बांधना चाहते हो मुझे ? महाराज, स्वतंत्र होने के लिए, स्वातंत्र्य की पूर्ण अनुभूति करने के लिए और इस का मर्म समझने के लिए तो मैंने धर्मपरिवर्तन किया है। सत्ता किसी भी रूप में बंधनकर्ता है। मैं तो सत्ता के इस स्वरूप को भी चुनौति देना चाहता था। लेकिन केवल मेरे अपने तरीके से ! कोई जबरदस्ती से नहीं।

वचन, आप को दूंगा महाराज ! पहली बार आपने मुझ से कुछ मांगा है तो अवश्य दूंगा। स्नेह का स्थान मेरे लिए किसी भी वचन से कम नहीं। मेरा वचन भी स्नेह का, स्नेहवश होगा। दोस्तों के लिए तो वचन निभाने पडेंगे। लो, बापु, लाइए आपका हाथ और लीजिए यह मेरा हाथ... लो तो यह मेरा वचन.. आंखे बंद करके।

न्हानी का क्या दोष, ऐसा ? और बच्चों का भी ? हां, हां, यह तो सच्ची बात। मेरे कारण, बिना कारण, उन को तकलीफ़ पहूंची है। व्यक्ति की बदौलत परिवार और दोस्तों को तकलीफ़ पहूंचे यह भी अच्छा तो नहीं है। मैं जानता हू कि बच्चे बड़े होंगे, उनके विविध संस्कार होंगे तब जातिजन, परिवारजन हाज़िर नहीं रह सकेंगे। उनको यह सब दु:ख उठ़ाने पडेंगे। अपने बच्चों को मैं गोदमें भी नहीं ले पाता। अरे, न्हानी भी अंदर से आलिंगन की प्रतीक्षा में होगी ! एक ही छत के नीचे रहेते हुए हम दोनों पति-पत्नी एक दूसरे को आलिंगन

भी नहीं दे सकते । महाराज, इसलिए आप कहते हो यह बात सही है कि उनका क्या दोष ? क्या अपराध ?

वापस लौट आउं ? नहीं, नहीं वह कैसे हो सकेगा ? ईसु की करुणा की ओर झुका हुआ मैं लौट कैसे आउं ? उसमें मेरापन कहां ? मैं जो मूल्य खड़ा करना चाहता हूं वह तो गया न ? मैं वहां मूलांतर से गया हूं, महाराज, फैशन या नावीन्य से नहीं, पूरी समझ के साथ गया हूं। नादानी से नहीं, अपनी मरजी से गया हूं जबरदस्ती से नहीं, बदलाव प्रवृत्ति के दबाव से नहीं, खुदवफ़ाई से गया हूं। यह कोई करवट बदल लेने जैसा सरल काम नहीं है कि वापस लौट आउं ? परिवारजनों ? हां, बस यह तो एक मुश्किल है। परिवारजनों के लिए भी करुणा तो होनी ही चाहिए ! सिर्फ मेरा नहीं, मेरे साथ जुड़े हुए, सब परिवारजन भी दुःख में पड़े यह बात तो ठीक नहीं है। ईशन्याय से भी लोकन्याय ज्यादा निर्मम है। लोकआज्ञा अंतरआज्ञा से अधिक माननी पड़े तब समाधान अधिक करने पड़ते है। ठीक है, अभी तो वचन दिया है इसलिए आप सब की आज्ञा शिरोधार्य गिन कर वापस लौटता हूं। कुछ नहीं तो न्हानी, मुनि और भाई-परिवार तो राज़ी होगें। आप प्रसन्न होगें और विशेष तो यह बलवंतराय भी। आइये, बल्लुराय, गले मिले... महाराज, उन्हें ज़रा उठाईये, हाथ पकड़ कर। उन को जरा उठने में देर लगेगी ....(आलिंगन)

कल ? हां, कल शरदपूर्णिमा है न ? यह न्हानालाल के लिए तो माणेकठारी पूर्णिमा ! चलेंगे ! गोपनाथ जाना है ? अवश्य चलेंगे।

सितार ? नहीं, महाराज ! वह तो अब नहीं बजेगी। आप शायद नहीं जानते होंगे, लेकिन प्राणलाल की मृत्यु के बाद मैंने सितार बजाना छोड़ दिया है। प्राणु सितार नियमित रूप से सुनता था और मेरे साथ अपनें हाथों से ताल देता था। उसकी अंतिम क्षणों में भी मैने सितार बजाई और उसी वक्त उसने अंतिम सांस ली। उसने सांस छोड़ी और मैने सितार। मेरा ताल ही गूम हो गया, महाराज़, अब मैं कैसे सूर छेड लूं ? इसलिए, मुझे मजबूर मत करना महाराज। इस में मुझे वचनबद्ध मत करना। बहुत समय बीत चुका है। हम सब थक गये है। कल शरदपूर्णिमा के दिन विशेष रूप से थक जायेंगे। विश्राम कर ले। कल मिलेंगे, गोपनाथ संग।

(अंधकार-प्रकाश)

(गोपनाथ महादेव और समंदर का किनारा)

महाराज ! पहले भी आये हैं गोपनाथ लेकिन इस शरदपूर्णिमा की रात गोपनाथ का नज़ारा कुछ ओर ही है। ठाकुर, तुम तो पहली बार आये हो न ? हालां कि, रेवातट का सौंदर्य भी अनुपम है। मैं जब वडोदरा में था तब ठाकुर के साथ रेवाकिनारे पर घूमा हूं। और कवि को तो वढवान या अहमदाबाद में ऐसा विपुल जलराशि कहां दिखाई देनेवाला था ? महाराज, यह विराट और अगाध जलराशि मानो मुझे खींच रहा है, लगता है कि प्रभु ईसु की निर्मल आंख खींच न रही हो। 'क्या ? फरमायेश कर रहे हो ? हम तीनों ? यह दृश्यपट देख के कोई कविता करें ? (कोयल की आवाज़) देखा ? सुना, महाराज? कवि? सुना कोकिलस्वर ? यहां की शांति को कैसे परिप्लावित कर के भर देता है ? पहले कवि को कुछ बोलने दो। कवि गाओ। बाद में ? ठाकुर तुम ? तुम भी बाद में ? सोच के ? ठीक है। बाकी बचा मैं। चलो, मैं ही कुछ बना लूं।

महाराज। मुझे एक विचार आता है। गोपनाथ का मंदिर है, शंकर का पुराना थानक। तो उसी नाम का राग छेड़ दूं तो ? और यह सागर अपनी उँचीनींची मौजों से झुल रहा है तो झूलणा छंद का इस्तमाल कर लूं तो ? शंकराभरण राग और झूलणा छंद। महाराज, कवि, ठाकुर, हो जाओ सज्ज। काव्यमेरी पधार रही है :

(राग शंकराभरण में गान)

"आज महाराज जल पर उदय जोई ने
चन्द्रनो हृदयमां हर्ष जामे,
स्नेहघन, कुसुमवन विमल परिमल गहन
निज गगनमां ही उत्कर्ष पामे
पिता ! कालना सर्व संताप शामे।
जलधिजल उपर दामिनी दमकती,
यामिनी व्योमसर मांही सरती,
कामिनी कोकिला केलिकूजन करे,
सागरे भासती भव्य भरती !
पिता ! सृष्टि सारी समुल्लास धरती !

तरल तरणी सभी सरल सरती ।
पिता ! सृष्टि सारी समुल्लास धरती ।"

(कान्त के घर का आँगना)

कथक : **प्रायश्चित करने को कवि का चित्त सज्ज है,**
जाति के लोग आये है चौंक भीडमचक्क है ।

कवि : हे विप्रवरों । पहले आपकी विधि के अनुसार यह यज्ञोपवीत मैं पुनः धारण कर रहा हूं और साथ ही यह मंत्रोच्चार कर रहा हूं :

ॐ यज्ञोपवीतं परमं पवित्र
प्रजापतेत्सह पुरस्तात ।
आयुष्यग्रंथ प्रतिमुंचं शुभ्रम्
यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेज ।।
ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं
भर्गोदेवस्य धिमहि धियो योनः प्रचोदयात् ।।

(गायत्री मंत्र तीन बार)

ठहरो । बुआ की अंबा को बुलाओ । अंबा, देख तुम कहती थी न रो रो कर, कि वापस लौट आओ । लो, मैं आ गया । तुम्हारी साक्षी में ही यह यज्ञोपवीत पुनः धारण कर रहा हूं । लो, तुम्हारा हाथ लगाओ जरा ताकि तुम्हें और मुझे दोनों को चैन आये ।

(यज्ञोपवीत धारण करना)

आईये, विप्रवरों । भोजन के लिए पधारिये । आप की साक्षी में मैं यह प्रायश्चित कर रहा हूं । आप मेरे साथ भोजन लीजिए और मुझे बोजमुक्त कीजिए । मेरा पुनः स्वीकार कीजिए । लो, मैं ही परोस दूं आपको । हां, पेट भरके खाना, मेरे बाप, दिल से खाना और दिल से स्वीकार करना । लो, सवाईलाल, आप लो । नृसिंहप्रसाद आप भी लो लड्डु । मूऴशंकर, आपको तो दो दूंगा, हां, हां तो दो न ? चलिए आमने सामने हो जाये । बस ? (दो दो लड्डु आमने सामने ले रहे हो ऐसा अभिनय) बस, बस, मैं अकेला और देनेवाले आप इतने सारे ? यह तो पेट है कि पिटारा ? धनेश्वरजी, आप भी लीजिए । अरे, प्रश्नोरा

को प्रमेह कैसा ? आप तो इस का उपाय भी जानते हो । घर जाकर मामेजबा या सुदर्शन का चूरन ले लेना या तो फिर गंगाजलिया तालाब में तैरने के लिए जाकर पड़ना । प्रमेह तो क्या, प्रमेह का बाप भी आये तो भगा देंगे। अरे, भट्टजी, आप क्यों ऐसे डकार लेने लगे ? पछेगाम और लड्डु का तो जन्मजन्मांतर का संबंध है । आप का बस चले तो पूरे गांव में सीधी लड्डु की ही फ़सल उगायें ।

बस ! तृप्त हुए सब ? ठहरो दक्षिणा लिए बिना मत जाना ।

(दरवाजे पे खड़े खड़े दक्षिणा दे)

लो, कृपाशंकर, प्राणशंकर इसे भी स्वीकार करो । सर्व को मेरी जय जय । पुनः पधारना मेरे बाप मेरे गरीबखाने में ।

(सब के जाने के बाद)

न्हानी । अच्छा लगा न ? मुनि, बेटा, आओ । अब तो मेरे पास आओ। अब, कल तेरी सगाई की रसम हो पायेगी । यों मेरी ओर क्या देख रहा है ? न्हानी, उसे कहो कि मेरे पास आये । (मुनि आये । कवि की आंखे अश्रुसभर, आलिंगन) न्हानी, सभी ने खाना खाया न ? तुम तो राजी न ? और सब ? क्या ? क्या कह रही हो ? तुमने ही महाराज भावसिंहजी को कहलवाया था इस मनमिटाव के लिए ? ओह ! अब समझा ? 'डाईव ईन लव ? ठीक है। चलो, अब सब विश्राम करें ।

(अंधकार-प्रकाश)

कथक : **थोडा वक्त बीता, न्हानी, सख्त बीमार हो गई,**
हवाबदल के वास्ते, गांव बोटाद जा बसी ।
वह आपन्नसत्त्वा थी, बनी थी कृश थोडी भी,
रहता बुखार थोड़ा भी, शुश्रूषा करते कवि ।

कवि : हां, हां, खड़ी मत हो । न्हानी, मैं हूं ना ? कहो, क्या ला दूं । पानी ? लो, दे रहा हूं । देखो, आज तो मैंने अरुई के पत्तें बनाएं है । बैदजीने खट्टा खिलाने की परहेज लगाई है इसलिये बिना खटाई ही मैने बनायें है ? कहो कैसे ? पहेले नमक के पानी से सभी पत्तें घो डाले । बाद में अच्छी तरह से गुड़-बेसन का मिश्रण तैयार किया और लगाया और तलें घी में । खट्टापन आ ही

ना सके । हां, सूरत में जब हम थे, तब घी का तड़का देने के बजाय घी में सीधे तल लेते थे पत्तें को ! बस उसी तरह । मेरी न्हानी को बिना खटाई जो खिलाना है ! बच्चों के लिए भी दाल चावल बनाए हैं । मुंग की दाल ! थोड़ा अदरख पीस कर ड़ाला है और ऊपर ड़ाली है थोड़ी काली मिर्च ! तुम तो लहसून खाती नहीं हो । थोडी देर बैठो । मैं यह तकिया तेरे पीछे लगा दूं । हां, धीरे धीरे । बैठो । क्या, तकिये के बजाय मेरे हाथ का सहारा लेना चाहती हो? तो मैं तुझे खिला कैसे सकूंगा ? एक हाथ का तकिया बनाउं और दूसरे हाथ से खिलाउं ?

वाह, वाह । मेरी लाजवंती ! ठीक है, जैसा तुम चाहो ! चलो, अब मुंह खोलो और यह गरम गरम मुंग दाल और चावल का अपूषण और यह गरम गरम पत्तें । हां,दो ही दूंगा । शायद रास न आये तो ? न्हानी। प्राणु भी बहुत याद आता है । मैंने उसकी भी इतनी ही सेवा की थी । मेरे हिस्सें में जिन की सेवा आती है वह.... कहीं तुम्हें तो कुछ....

क्या कह रही है ? मेरी हाजरी में ही तेरी आंख वंद हो जाये तो अच्छा न ? और स्वर्ग में तो मिल ही सकेंगे ? लेकिन वह तो कव ? और यहां का क्या ? ऐसी स्वार्थी बन कर चली मत जाना, मुझे और हम सब को छोड़ कर। ठ़हरो, तुम्हारे हाथ धूलवाउं । सो मत जाना । खाने के बाद थोड़ी देर बैठ । लो, यह पानी, हाथ धो लो ।

(कवि न्हानी के हाथ साफ कर दे । सब बरतन एक कोने में ले जाये । बरतन की सफाई करे)

यह बरतन साफ करता हूं वह तुझे अच्छा नहीं लगता न ? और ख़ाना पकाता हूं वह अच्छा लगता है ? अच्छा मेरे हाथ का खाना मीठा लगता है इसलिए चला लेती हो ? तो चल, खड़ी हो और कर साफ यह सब बरतन । अरे, पगली, मुझे तो घर के सभी काम अच्छे लगते है । देखना यह बरतन साफ करने के बाद में झाड़ू-पोछा भी कर लूंगा।

(अचानक न्हानी की चीखने की आवाज । बरतन छोड कर कवि का उठना)

अरे, तुझे कुछ होता है न्हानी ? नहीं, नहीं, नहीं, शांत हो जाओ । (पीठ पर हाथ फैरना) यूँ कांप क्यों रही हो ? अभी सब कुछ ठीक हो जायेगा। कुछ नहीं होगा । मुनि, बेटा मुनि। जाओ तो, जरा बैदजी को बुला लाओ तो।

(मुनि का जाना) अच्छा है, पडोस में ही रहते हैं। यह क्या कर रही हो न्हानी? यह खिंचाव कैसा ? नहीं, नहीं, (विराम)

गयी । गयी ही । सफल न हुई मेरी सेवा । अब जैसा मेरा और मेरे बच्चों का नसीब़ । प्रभु ! जैसा आप को अच्छा लगा। स्वर्ग में एक मेरे लिए ही जगह नहीं है ! अब तो मेरे सभी स्वजन वहां ही है । बस एक मैं ही बदनसीब़ यहां, इस दोज़ख़ में रहा हूं ।

बैदजी । आप आ गये ? लेकिन अब तो खेल खतम! मुनि बेटा ! माँ तो चल बसी ! अहं ! रो मत ! उस के लिए तो देख, स्वर्ग के द्वार वे रहे खुले। देख, ऊपर कितना प्रकाश दिखाई देता है । दिव्य प्रकाश । स्नेह का उज्वल प्रकाश । मत रो बेटा, मत रो ! जाओ अंदर जाओ ।

(अंधकार-प्रकाश)

कवि : कहीं भी जी नहीं लगता । न्हानी को गये दो महिने हो गये । वह नवजात शिशु भी चला गया । लगता है कि कहीं घूम आउं । कलापी कह रहे थे उस तरह कश्मीर घूम आउं । घरा ऊपर रहे स्वर्ग के दर्शन कर आउं । पहलगांव, हिमालय के शिखर, श्रीनगर, लाहोर, रावलपिंडी । हां, लाहोर से रावलपिंडी. अब तो अकेले ही निकल पड़ना है । प्रभुता के प्रदेश में । न्हानी थी तब तो बंधन था । वह तो जाने भी न देती शायद ।

(पुस्तक लेकर)

योहान ! योहान ! तुझे पढ़ने से करार मिलता है । यह घटना भी शाश्वत स्थिति के लिए उपकारक ही होनी चाहिए । ईश्वरकृपा से एक सर्वोपरि सत्य ज्वलंत, सिद्ध और स्थिर है । प्रभु जिसस स्वर्ग और पृथ्वी का एक ही ईश्वर है ।

(छाती पर हाथ रखना)

यह उपवीत मुझे अब भी चुभ रही है । निकाल ही दूं । अब तो न्हानी भी कहां है ? उसके लिए तो पुन: स्वीकार की थी ! वह गयी तो सामाजिकता भी गयी । अब यह किसके लिए ? यह जोड़ा उसके लिए तो था । लाओ, तब तो इसे भी निकाल ही दूं । यह बोझ हटेगा तो मनचित्त हलके होंगे ।

(उपवीत निकालना । धीरे से तुलसी के पास रखना ।)

लो, मा, तुलसी । यह तुम्हें अर्पण । बाह्याचार से मैं भले ही ब्राह्मिन रहा, लेकिन मेरा अंतर तो आज भी प्रभु ईसु से ही जुड़ा हुआ है । मुझे क्षमा

करना न्हानी । वैसे भी सच्चा द्विजत्व तो कहां मिला ही था ? शायद सच्चा द्विजत्व तो, स्वीडनबोर्ग कहते है इस तरह, स्वर्ग में ही ।

(अंधकार-प्रकाश)

खत : भावनगर से पट्टणी का ख़त है । कल भावसिंहजी महाराज अक्षरनिवासी हुए । अरे रे, महाराज ? आप भी ? अब तो मेरे सब स्वजन बारी बारी जाने लगे । हे, संवादिता के साधक ! आप के लिए तो स्वर्ग के द्वार खुले ही होंगे । बस मैं रह गया साथीहीन, संगीहीन, श्वानवत् इन सूने शिखरों में मारा मारा, भटकता । प्रभु, मुझे भी बुलालो ! हा, काश्मीर ही मेरी कश्मकश्म का, पीडा का उपाय है। श्रीनगर, पहलगांव, लाहोर, रावलपिंडी ट्रेईन....ट्रेईन....ट्रेईन...

(ट्रेईन का दृश्य)

(पत्रलेखन)

भाई हरि,

यह पत्र में श्रीनगर से लिख रहा हूं। मेरी बीमारी चल रही है। ट्रेईन में हूं। संभव है कि मेरी देह गिरे तो मेरा अग्निसंस्कार मत करना। हो सकेगा तो मैं ही अपने आपको कश्मीर की इन वादियों में स्वयं ही दफ़ना दूंगा। मेरी कब्र इस कश्मीर में ही बने ऐसी मेरी ईच्छा है। याद रखना हरि, पुनरुत्थान संभव है। आमेन।

मणिशंकर

कथक : **कबर में गाड़ लो चाहे जला दो या चिता में भी,**
कवि का शब्द हूं मैं तो पुनः ऊत्थान होता हूं।
दबाने से नहीं दबता, न कूटने से भी कूटता मैं,
कवि का शब्द हूं मैं तो सदा उत्क्रान्त होता हूं।
भीतर से कूट-पेचीदा, बहुत संकुल होता हूं,
प्रकट हो जाउं नाटक में, सदा संक्रांत होता हूं।
प्रपंची ना, तलेगामी, प्रमेयों को पचा लेता,
कवि का शब्द हूं मैं तो, सदा निर्भ्रान्त होता हूं।

महेमानो ! ओ व्हालां
पुनः पधारजो.........
तम चरणे अम सदन सदैव सुहाय जो,
महेमानो ! ओ व्हालां
पुनः पधारजो !

अंक द्वितीय समाप्त

G-5781
20-11-07

जलपरदे से

I. I. A. S. LIBRARY

Acc. No.

This book was issued from the library on the date last stamped. It is due back within one month of its date of issue, if not recalled earlier.

CP&SHPS—519-I.I.A.S./2004-25-6-2004-20000.

Library IIAS, Shimla
H 891.472 V 99 J
G 5781

पार्श्व पब्लिकेशन : अहमदाबाद